40

2, I

नववर्षाङ्क

वर्ष १० सं० २००७

वार्षिक मूल्य ७)

संस्थापक-
श्रीमान् अमृतवाग्भव

❀ श्रीः ❀

…स्वाध्याय ❀

———०००———

संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष—

…तन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य

…मान् अमृतवाग्भवजी महाराज

★

संरक्षक—

…०५ मान् दुर्गासिंहजी बहादुर सी० आई० ई०, सोलन।

…ी रईस जण्डवाल (होशियारपुर)

…, सदस्य परामर्शदातृ-समिति हिमाचलप्रदेश, सोलन।

★

सहायक—

…ा महारानी साहिबा (सिरमौरीजी) बघाटराज्य।

…० गोवर्द्धन शर्माजी छांगाणी सीतावर्डी, नागपुर।

…जजी राजपुरोहित ताल्लुकेदार भरतपुर।

…रजी (श्री चुन्नीलालजी) भरतपुर।

…रजी आढ़ती खड़ (पंजाब)।

★

सम्पादक—

…० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिषाचार्य

★

उप सम्पादक—

काव्यतीर्थ श्री पं० भवानीशङ्कर त्रिवेदी शास्त्री बी० ए०

★

प्रकाशक—

…ायसदन सोलन [हिमाचल प्रदेश]

...वाद पहुँचना आवश्यक है।
...न हो सकेंगे।
—[illegible]

❀ श्रीः ❀

❀ श्रीस्वाध्याय ❀

संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष—

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य

श्री १०८ मान् अमृतवाग्भवजी महाराज

★

संरक्षक—

धर्ममार्त्तण्ड राजासाहब श्री० १०५ मान् दुर्गासिंहजी बहादुर सी० आई० ई०, सोलन।

श्रीमान् चौधरीसाहब गगनसिंहजी रईस जण्डवाल (होशियारपुर)

श्रीमान् ला० शिवचरणदासजी, सदस्य परामर्शदातृ-समिति हिमाचलप्रदेश, सोलन।

★

सहायक—

श्री १०५ मती स्व० माँजी महारानी साहिबा (सिरमौरीजी) बघाटराज्य।

आयुर्वेदमहोपाध्याय श्री पं० गोवर्द्धन शर्माजी छांगाणी सीतावर्डी, नागपुर।

श्रीमान् स्व० पं० चतुर्भुजजी राजपुरोहित ताल्लुकेदार भरतपुर।

श्रीमान् स्व० अक्रियानन्दजी (श्री चुन्नीलालजी) भरतपुर।

श्रीमान् लाला शिवप्रसादजी आढ़ती खड़ (पंजाब)।

★

सम्पादक—

श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिषाचार्य

★

उप सम्पादक—

साहित्यरत्न काव्यतीर्थ श्री पं० भवानीशङ्कर त्रिवेदी शास्त्री बी० ए०

★

प्रकाशक—

श्रीस्वाध्यायसदन सोलन [हिमाचल प्रदेश]

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना 'श्रीस्वाध्याय'का मुख्य उद्देश्य है।

संचालकगणोंके नियम—

संरक्षक—

(१) जो महानुभाव ३००) तीनसौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जायेंगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५०) रु० से ३००) रु० तक प्रतिवर्ष सहायता देंगे, वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जायेंगे।

'श्रीस्वाध्याय' आश्विन शुक्ला १०, पौष शुक्ला १०, चैत्र शुक्ला १० और आषाढ़ शुक्ला १० को प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ४) रु० और एक प्रतिका १।) रु० है।

(२) जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदन की ओरसे प्रार्थना-पूर्वक मँगवाये जायेंगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे। अन्य लेख यदि गवेषणा-पूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जावेंगे तो यथासमय प्रकाशित हो जायेंगे, अन्यथा नहीं।

(३) लेख, कविता, चित्र, समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियां और विनिमय (परिवर्त्तन) की पत्र पत्रिकाएँ सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (शिमला) के पतेसे भेजने चाहिएँ।

(४) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्टअक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(५) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने न लौटानेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। अस्वीकृत लेख डाकव्यय प्राप्त होने पर ही लौटाये जा सकेंगे।

ग्राहकोंके नियम—

'श्रीस्वाध्याय' के स्थायी ग्राहक वर्षारम्भके प्रथमाङ्कसे (आश्विनमास की विजयादशमीसे) ही बनाये जाते हैं, चाहे वे मूल्य कभी भेजें। यदि विजयादशमीका 'नववर्षाङ्क' समाप्त हो जावे या कोई ग्राहक अवधि समाप्त होने पर पीछे विशेषाङ्क न लेना चाहें तो बीचमें किसी भी समयसे ग्राहक हो सकते हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे वार्षिक मूल्य ४) रु० न लेकर वर्ष-समाप्ति (आषाढ़) तकके शेष अंकोंका मूल्य ही लिया जायगा। 'नववर्षाङ्क' के बिना तीन अंकों या नौ मासका मूल्य ३) रु० और एक अंक का मूलय १।) रु० मनीआर्डर द्वारा पेशगी आना चाहिए। वी० पी० मंगानेसे उक्त मूल्यमें चार आने रजिस्ट्री खर्चके अधिक बढ़ जायेंगे। वर्षारम्भसे स्थायी ग्राहक बन कर पूरी फाइल मंगवानेमें ही ग्राहकोंको विशेष लाभ है।

मूल्य भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर अपना नाम तथा पूरा पता और ग्राहकसंख्या स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिए। यदि ग्राहक संख्या स्मरण न हो और पुराने ग्राहक हों तो मनीआर्डरके कूपन पर 'पुराना' शब्द और नये ग्राहक हों तो 'नया' शब्द नामके साथ अवश्य लिख देना चाहिए। वार्षिक मूल्य या एक अंकके मूल्यके नोट या टिकट लिफाफेमें कदापि न भेजें।

'श्रीस्वाध्याय' का नमूना बिना मूल्य किसीको नहीं भेजा जाता। जिन सज्जनोंके जवाबी पत्र या उत्तरके लिए टिकट आवेंगे, उन्हींको तत्काल उत्तर दिया जावेगा। 'श्रीस्वाध्याय' प्रकाशित होनेकी तिथि (शुक्ला दशमी) को प्रत्येक ग्राहकके नाम बड़ी सावधानीसे भेज दिया जाता है। यदि किसी ग्राहकके पास कोई अंक न पहुंचे तो उसके प्रकाशित होनेकी तिथिसे १५ दिनके अन्दर हमें सूचना देनी चाहिए। बादकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—

श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना 'श्रीस्वाध्याय'का मुख्य उद्देश्य है।

संचालकगणोंके नियम—

संरक्षक—

(१) जो महानुभाव ३००) तीनसौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जायेंगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५०) रु० से ३००) रु० तक प्रतिवर्ष सहायता देंगे, वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जायेंगे।

'श्रीस्वाध्याय' आश्विन शुक्ला १०, पौष शुक्ला १०, चैत्र शुक्ला १० और आषाढ़ शुक्ला १० को प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ४) रु० और एक प्रतिका १।) रु० है।

(२) जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदन की ओरसे प्रार्थना-पूर्वक मँगवाये जायेंगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे। अन्य लेख यदि गवेषणा-पूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जावेंगे तो यथासमय प्रकाशित हो जायेंगे, अन्यथा नहीं।

(३) लेख, कविता, चित्र, समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियां और विनिमय (परिवर्त्तन) की पत्र पत्रिकाएँ सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (शिमला) के पतेसे भेजने चाहिएँ।

(४) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्टअक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(५) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने न लौटानेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। अस्वीकृत लेख डाकव्यय प्राप्त होने पर ही लौटाये जा सकेंगे।

ग्राहकोंके नियम—

'श्रीस्वाध्याय' के स्थायी ग्राहक वर्षारम्भके प्रथमाङ्कसे (आश्विनमास की विजयादशमीसे) ही बनाये जाते हैं, चाहे वे मूल्य कभी भेजें। यदि विजयादशमीका 'नववर्षाङ्क' समाप्त हो जावे या कोई ग्राहक अवधि समाप्त होने पर पीछे विशेषाङ्क न लेना चाहें तो बीचमें किसी भी समयसे ग्राहक हो सकते हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे वार्षिक मूल्य ४) रु० न लेकर वर्ष-समाप्ति (आषाढ़) तकके शेष अंकोंका मूल्य ही लिया जायगा। 'नववर्षाङ्क' के बिना तीन अंकों या नौ मासका मूल्य ३) रु० और एक अंक का मूल्य १।) रु० मनीआर्डर द्वारा पेशगी आना चाहिए। वी० पी० मंगानेसे उक्त मूल्यमें चार आने रजिस्ट्री खर्चके अधिक बढ़ जायेंगे। वर्षारम्भसे स्थायी ग्राहक बन कर पूरी फाइल मंगवानेमें ही ग्राहकोंको विशेष लाभ है।

मूल्य भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर अपना नाम तथा पूरा पता और ग्राहकसंख्या स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिए। यदि ग्राहक संख्या स्मरण न हो और पुराने ग्राहक हों तो मनीआर्डरके कूपन पर 'पुराना' शब्द और नये ग्राहक हों तो 'नया' शब्द नामके साथ अवश्य लिख देना चाहिए। वार्षिक मूल्य या एक अंकके मूल्यके नोट या टिकट लिफाफेमें कदापि न भेजें।

'श्रीस्वाध्याय' का नमूना बिना मूल्य किसीको नहीं भेजा जाता। जिन सज्जनोंके जवाबी पत्र या उत्तरके लिए टिकट आवेंगे, उन्हींको तत्काल उत्तर दिया जावेगा। 'श्रीस्वाध्याय' प्रकाशित होनेकी तिथि (शुक्ला दशमी) को प्रत्येक ग्राहकके नाम बड़ी सावधानीसे भेज दिया जाता है। यदि किसी ग्राहकके पास कोई अंक न पहुंचे तो उसके प्रकाशित होनेकी तिथिसे १५ दिनके अन्दर हमें सूचना देनी चाहिए। बादकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—

श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)

श्रीस्वाध्यायको—

भारतीय विचक्षणवर्ग किस दृष्टिसे देखता है—

'श्रीस्वाध्याय' पर प्राप्त हुई सम्मतियोंमेंसे भारतके सम्मानित धुरन्धर विद्वानों एवं पत्रोंकी कुछ सम्मतियां प्रथम वर्षके गताङ्कोंमें प्रकाशित की गई थीं। उसके अनन्तर 'ग्रीष्माङ्क' पर प्राप्त हुई अनेकों सुप्रसिद्ध विद्वानों और पत्रोंकी सम्मतियोंमेंसे कुछ-एकका संक्षिप्त भाग यहां और देखिये—

हिन्दीके महान् कलाकार कई ग्रन्थोंके सफल अनुवादक और सुप्रसिद्ध लेखक धुरन्धर विद्वान् 'माधुरी' के सुयोग्य सम्पादक श्री पं० रूपनारायणजी पाण्डेय अपने ता० ३-८-४२ के पत्रमें माधुरी कार्यालय लखनऊ से लिखते हैं—

"प्रिय त्रिवेदीजी ! प्रणाम। श्रीस्वाध्यायका 'ग्रीष्माङ्क' मिला बहुत उत्तम है। सभी सामग्री ज्ञानवर्द्धक और उपादेय है। आपका परिश्रम देखकर हम चकित होगए। प्रत्येक देशभक्त, राष्ट्रभाषाप्रेमी, जिज्ञासु, धर्मप्रेमीको अवश्य इसे अपनाना चाहिए। हर एक पुस्तकालयमें यह पत्र स्थान पाने योग्य है। यही मेरी सम्मति है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

हिन्दीकी श्रेष्ठतम पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० देवीदत्तजी शुक्ल अपने ता० ७-८-४२ के पत्रमें प्रयागसे लिखते हैं—

"........श्रीस्वाध्याय हमें बराबर मिला है और हम लोग उसे बराबर पढते रहे हैं। आपका 'स्वाध्याय' अपने विषयका एक नया पत्र है और उसका वास्तवमें प्रचार होना चाहिए........।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

राजस्थानका सुप्रसिद्ध राष्ट्रिय पत्र साप्ताहिक 'नवज्योति' अपने ता० ३ अगस्त १९४२ ई० के अङ्कमें लिखता है—

"........अब तक इस पत्रके चार अङ्क प्रकाशित होचुके हैं। इनको देखनेसे पता चलता है कि यह भारतीय समाजकी सर्वतोमुखी उन्नतिका साधक है। यह हिन्दूसंस्कृतिकी विशेष रूपसे घोषणा करता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सम्बन्धी प्रायः सभी विषयों पर प्रकाश डाला जाता है। प्राचीन ज्योतिष विज्ञान इसकी मुख्य विशेषता है। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, ग्रहनक्षत्रोंके योग आदिके फलस्वरूप होनेवाली भावी घटनाओंके सङ्केत और व्यापारिक चीजोंकी तेजी-मन्दी विचार दिलचस्प और उपयोगी होता है। भारतीय त्योहारोंकी राष्ट्रीय उपयोगिता और महत्त्व भी समझानेका प्रयत्न किया जाता है। इसके अलावा इतिहास, कृषि और स्वास्थ्य आदि विषयोंकी भी इसमें चर्चा रहती है। संक्षेपमें यह एक लोकोपयोगी और ज्ञानवर्द्धक पत्र है और मनुष्य जीवनके रोजमर्राके विषयोंको स्पर्श करता है। इसके सेवाभावी सम्पादक इसे उपयोगी बनानेके लिए सचेष्ट हैं। हम पत्रकी उन्नति और सफलताके इच्छुक हैं और पाठकोंसे उसे अपनानेकी अपील करते हैं।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अखिल भारतीय पञ्चाङ्ग-संशोधन सभाके अध्यक्ष ज्यौतिशशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित वयोवृद्ध विद्वान् ज्यौतिषाचार्य श्री पं० दीनानाथजी शास्त्री चुलेट महोदय अपने ता० २९-८-४२ के पत्रमें वैदिक वेधशाला इन्दौर से लिखते हैं—

"........श्रीस्वाध्यायके अङ्क प्राप्त हुए। सदुद्योगके लिए बधाई है। पत्रकी वर्द्धमान उन्नति चाहता हूं। ....लेख मौलिक एवं उद्बोधक हैं। पूज्यपाद अमृतवाग्भव आचार्यजीके लेख तो अनुपम बढ़िया हैं।........"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

श्रीभारत-धर्म-महामण्डल काशीके मंत्री श्री पं० बालकृष्णजी मिश्र बी० ए० एल-एल० बी० महोदय ता० १४-९-४२ के पत्रमें महामण्डलकी ओरसे लिखते हैं—

"........श्रीस्वाध्याय पत्रके लेख ठोस और विचार मननीय हैं। हिन्दू पर्वोंकी ऐतिहासिक भित्ति और उनकी उपयोगिता पर अच्छा विवेचन किया गया है। प्रत्येक हिन्दू संस्कृतिका पुजारी इस पत्रसे समुचित आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकता है। पत्र उत्तम और पठनीय है।........"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सुप्रसिद्ध कथाकार वाणीविनोद कविभूषण महोपदेशक श्री पं० विष्णुदत्तजी 'विकल' लाहौरसे लिखते हैं—

"........श्रीस्वाध्याय अपने नामके बिल्कुल अनुरूप निकल रहा है। मुझसे पूछे तो कहदूं 'श्रीस्वाध्याय' का प्रति अङ्क विविध-ज्ञान-समन्वित एक पूरा ग्रन्थ होता है— जो पठनीय, मननीय और संग्रहणीय है। अपनी किस्मका अकेला ही पत्र है श्रीस्वाध्याय।........"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

हिन्दीके सुयोग्य विद्वान् दैनिक हिन्दी मिलाप, शक्ति आदिके भू०पू० सहकारी सम्पादक तथा बिरलामिल-पत्रिकाके भू०पू० प्रधान सम्पादक श्री पं० देवदत्त शर्माजी लिखते हैं—

"............श्रीस्वाध्याय मिला। सम्पादन अत्यन्त सफल है। ज्यौतिषी होते हुए आप सफल सम्पादक निकले, आश्चर्य ही है। गुदड़ीमें छिपा लाल निकला। मेटर सभी बहुत उत्तम है............।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जैन-ज्योतिष-कार्यालयके अध्यक्ष श्री प्रोफेसर बी० सी० महता म्यूनिस्पल कमिश्नर ब्यावरसे लिखते हैं—

"............श्रीस्वाध्यायके अङ्क आद्योपान्त पढ़े। लेख सारे ही सारगर्भित हैं। ज्योतिषमें विशेष दिलचस्पी होनेसे मुझे ज्योतिष सम्बन्धी लेख विशेष पसन्द आये।...............आपका यह पत्र अतिशीघ्र सर्वप्रिय बन जावेगा ऐसी मेरी धारणा है। आपका परिश्रम अत्यन्त सराहनीय व भारतके लिए हितकर है।"

———

श्रीस्वाध्यायमें क्या क्या होगा ?

विज्ञ पाठकोंको 'श्रीस्वाध्याय' के उद्देश्य तथा नीतिका ज्ञान तो भलीभांति हो ही गया है। इसमें जो मोक्षादि पांच प्रधान स्तम्भ रक्खे गये हैं—उनके अन्तर्गत किन २ विषयों पर लेख लिखे जा सकते हैं ? इसकी एक संक्षिप्त सूची हम नीचे दे रहे हैं। इस तालिका द्वारा हमारे विद्वान् लेखकोंको विषय चुननेमें सुविधा होगी।

मोक्षस्तम्भमें—

भारतीय दर्शनोंका संक्षिप्त परिचय। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त (शाङ्कर रामानुज निम्बार्क माध्व श्रीकण्ठ भास्कर आदि मतोंका संक्षिप्त सार) शैव (त्रिक प्रत्यभिज्ञा पाशुपत आदि मतोंका संक्षिप्त परिचय) शाक्त (दक्षिण वाम कौल तन्त्र सिद्धान्त त्रैपुर आदि मतोंके संक्षिप्त परिचय) पारमार्थिक मोक्ष, व्यावहारिक मोक्ष आदि आदि।

धर्मस्तम्भमें—

वेदोंका स्वाध्याय। राष्ट्रिय शिक्षा। घरेलू शिक्षा। स्त्री शिक्षा। धर्म रहस्य। धर्ममें स्मृतियोंका स्थान। कल्प सूत्र। स्त्रीधन। दत्तक-दाय। दाय-भाग। प्रायश्चित्त विधान। पर्व व्रतोत्सवादि निर्णय। मुहूर्त्तादि निर्णय। पर्व किस प्रकार मनाये जायें। पर्व और त्यौहारोंका राष्ट्रिय महत्त्व। पर्व मनानेमें धार्मिक दृष्टिसे हानि लाभका विचार। ज्योतिश्शास्त्रानुसार तात्कालिक शुभाशुभ योग और भविष्यवाणियां। राशिफल। खगोलके ग्रह नक्षत्रादिकोंका परिचय।

अर्थस्तम्भमें—

अर्थ शास्त्र। चाणक्यके विचार। घरकी व्यवस्था। पारिवारिक आय व्यय। राष्ट्रको समृद्ध करनेके उपाय। यातायातमें अर्थ प्राप्ति। व्यापार। ज्योतिश्शास्त्रानुसार महर्घ समर्घ (तेजी मंदी) विचार। खानोंसे अर्थ प्राप्ति। आर्थिक दृष्टिसे कलाओंका विचार। पर्व और आर्थिक दृष्टि। युद्धसे आर्थिक हानि लाभ। कृषि (धान्य, फल, शाक-भाजी, ईख, कपास आदिके उत्पादन) से अर्थ प्राप्ति आदि आदि।

कामस्तम्भमें—

आयुर्वेद। शरीरके सभी अवयवोंको सुन्दर सुदृढ़ स्वस्थ ओजस्वी बनानेके उपाय। दीर्घजीवी बननेके उपाय। रसोईघर। कलाकौशल। घरकी स्वच्छता और पवित्रता। बच्चोंका पालन पोषण। भृत्योंके साथ व्यवहार। पशुपालन आदि आदि।

इतिहासस्तम्भमें—

इतिहास जाननेके साधन (ताम्रपत्र दानपत्र मुद्रा शिलालेखादि) संस्कृत-साहित्यका इतिहास। भारतीय ग्रन्थ और ग्रन्थाकारोंके परिचय। भौगोलिक परिचय (देशकी सीमायें नदियां पर्वत तीर्थ नगर ग्राम आदि) प्राचीनकालमें भूमण्डलके समस्त देश प्रान्त नगरादिकोंके जो नाम और सीमा थी उनके वर्तमान नाम और सीमाका विवेचन। महापुरुषों (दानवीर युद्धवीर धर्मवीर मृत्युवीर शास्त्रार्थवीर विशिष्टविद्वान् भगवद्भक्त राष्ट्रभक्त सिद्ध सती ज्ञानी आदि) के जीवन चरित्र। प्रत्येक वस्तु पर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार।

विशेष—

इसके अतिरिक्त 'श्रीस्वाध्याय' में कुछ सामयिक लेख भी रहेंगे। प्रत्येक अङ्ककी त्रैमासिक अवधिमें जो जो विशेष पर्व त्यौहार या जिन २ अवतारों एव महापुरुषोंकी जयन्तियां आवेंगी उन उन पर विशेष रूपसे प्रकाश डाला जावेगा। आगामी अङ्क (हेमन्ताङ्क) के लिए विद्वान् महानुभाव सर्व प्रथम निम्न विषयों पर सुविचारपूर्ण लेख भेजनेकी अवश्य कृपा करें।

सङ्कष्ट-चतुर्थी, षट्तिला-एकादशी, श्रीसीता-जयन्ती, श्रीमहाशिवरात्रि, राष्ट्रियपर्व होली, वसन्त, भक्तवर प्रल्हादका संक्षिप्त जीवन चरित्र, श्रीरामकृष्ण परमहंस तथा श्रीकृष्ण-चैतन्य-महाप्रभुके महान् आदर्श जीवन पर स्वतन्त्र विचार, आदि आदि।

सब लेख कार्तिक शु० १५ ता० २२ नवम्बर १९४२ तक सम्पादक "श्रीस्वाध्याय" सोलन (पञ्जाब) इस पते पर पहुँचना आवश्यक है।

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। ❀ श्रीः ❀ स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम्।

श्रीस्वाध्याय

[शरदंक]

स्वराष्ट्रशिक्षां गृह्णीयाच्चिकीर्षुः स्वां समुन्नतिम्।
दूरदृष्टिर्यया भूत्वा न कदाऽपि विषीदति ॥ [राष्ट्रालोक]

वर्ष २ | सोलन, आश्विन शु० १० सोमवार सं० १९९९ वि० | संख्या १

तत्तद्राष्ट्रे मानवानां व्यवस्थां शोभासम्पच्छालिनीमार्यरीत्या।
प्रेम्णा लोके स्थापयँस्तत्त्वदर्शी श्रीस्वाध्यायः कल्पतां विश्वभूत्यै ॥
—अ० वा० आचार्य

* कौमुदी-महोत्सव *

राका-शशाङ्क-शरदङ्क-मृगाङ्कमेत्य
स्वाध्यायमातनुत मा कुरुत प्रमादम्।
ज्योत्स्नोत्सवोऽस्य रचयेत् कमपि प्रकाशं
श्रीराष्ट्रजीवनपथं जनजागरायै ॥

सोलहों कलाओंसे परिपूर्ण राका (पूर्णमासी) के चन्द्रमाके समान इस शरदङ्क रूपी चन्द्रमाको प्राप्त कर स्वाध्याय करिए तथा इसका विस्तार करिए, इसमें कहीं प्रमाद न करना। इस शरदङ्करूपी चन्द्रमाका यह कौमुदीमहोत्सव उस अनिर्वचनीय अत्यन्त प्रकाशमान राष्ट्रको जगानेके मार्गका लोगोंको उद्बुद्ध करनेके लिए निर्माण करेगा। —अ० वा० आचार्य

द्वितीय वर्षके उपलक्षमें

नववर्षके उपलक्षमें हम अपने प्रेमीपाठकोंको यह कैसे बतलावें कि आप लोगोंके अनन्य सहयोगसे पत्रको उन्नत होनेका कितना शुभ अवसर मिला है। पत्रका विषय मुख्यरूपसे चतुर्वर्गका प्रतिपादन करना है और वह महामाया भगवतीकी असीम कृपा अथवा किसी दैवी परामर्शदाताके अतिरिक्त किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। क्योंकि वर्तमान समयमें जबकि विश्वके कोने-कोनेसे अग्निकी लपटें निकल रही हैं, प्रत्येक प्राणी अपनी आन्तरिक एवं बाह्य-ज्वालासे दग्ध होता चला जारहा है, किसी साधारण से कार्यका सञ्चालन भी अत्यन्त दुष्कर है। जब हम अपने अतीतके पृष्ठोंका सिंहावलोकन करते हैं तो हमें सन्देह होने लगता है कि हमने इतना बीहड़ पथ कैसे पार किया? इस कठिनाईके समयमें भी उत्तरोत्तर आगे बढ़नेकी तीव्र उत्कण्ठाको ईश्वरेच्छा अथवा सहयोगियोंका सहारा कहा जा सकता है। 'श्रीस्वाध्याय' के द्वितीय वर्षका यह प्रथमाङ्क भेंट करते हुए आज हमें एक प्रकारका सन्तोष-सा होरहा है, जिस उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर संस्थाने पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया था वह पूर्णताकी ओर अग्रसर है।

पत्रकारका धर्म भूली हुई जनताका मार्गप्रदर्शन करना है, परन्तु वर्तमान युगकी जटिल समस्याओंने उसे भी अपनी विशाल भुजाओंमें इस प्रकार जकड़ रक्खा है कि वह भी अपने कर्तव्यसे पराङ्मुख होता चला जा रहा है। प्रत्येक स्वतन्त्र एवं परतन्त्र राष्ट्रके पत्रकारोंकी आज यही अवस्था है; अतः स्वतन्त्रता और परतन्त्रताकी ओट लेकर इस प्रश्नका समाधान करना उपयुक्त न होगा, अस्तु।

'श्रीस्वाध्याय' पत्रका उद्देश्य जनताकी केवल रुचि-विशेषका ध्यान रखना मात्र ही नहीं अपितु उनके हित सम्पादनका ध्यान पूर्णरूपसे रखना अभीष्टतम है। हम क्या आज पर्यन्त बड़े-बड़े विद्वान् भी यही प्रतिपादन करते चले आए हैं कि रुचिकी अपेक्षया हितका ध्यान अधिक रखना ही राष्ट्रकल्याणका जीवित मार्ग है। यद्यपि हितकारक वाक्य अथवा मार्ग कुछ क्या अधिकतर कठिन एवं रूक्ष ही प्रतीत होता है, तथापि सात्विक और परिणाममें सुखदायी वही होता है। इसीलिए हम अपने पाठकोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे उपन्यास आदि बातूनी मनोमोदकोंसे मनोरंजनका ध्यान छोड़कर "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" तथा "अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः" इस कल्याणकर सिद्धान्तका अनुसरण करें।

कागजकी समस्याने इतना जटिल रूप धारणकर लिया है कि अनेक उच्चकोटिके पत्रोंने भी अपना प्रकाशन अनिश्चित कालके लिए स्थगितकर दिया है। ऐसी विषम परिस्थितिमें आधुनिक समस्त साधनोंसे दूर, पर्वतके एक कोनेमें बैठे हुए भी आज हम द्वितीय वर्षमें पदार्पण कर रहे हैं; इस सफलताका एक मात्र कारण हमारे 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठक तथा आर्थिक, वाचिक और मानसिक सहायता देनेवाली जनताको ही है।

हमारे पास जितने भी साधन थे उन सबका उपयोग कर हमने पत्रको यथासाध्य लोकोपकारक बनानेका प्रयत्न किया है; किन्तु इससे हमें अभी पूर्ण सन्तोष नहीं। जगदम्बा हमें शक्ति-सम्पन्न करे, हम चाहते हैं इस नववर्षमें 'श्रीस्वाध्याय' पाठकोंको इस से भी उत्तमोत्तम सामग्री भेंट कर सकें।

—हरदेव शर्मा त्रिवेदी
(सम्पादक)

राष्ट्रपति

नाऽविष्णुः पृथिवीपतिः

पाठकवृन्द ! गत ग्रीष्माङ्कमें "राजाका आदर्श" शीर्षकसे एक लेख हमने लिखा था। 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठकोंने उसको अत्यधिक सराहा भी। उसका अनुकूल परिणाम भी देखनेमें आनेसे चित्त सन्तोष का अनुभव करने लगा है। जहां समाचार पत्रोंमें राष्ट्रसभा (कांग्रेस) के अध्यक्षको जानबूझ कर या अनजाने जो राष्ट्रपति लिखा जाता था, वहां अब (कुछ पत्रोंमें) कांग्रेसपति लिखा जाना यह उस लेखका परिपाक बड़ा ही राष्ट्रहितकर प्रतीत हुआ है। यदि हमारे 'श्रीस्वाध्याय' का राष्ट्रहितैषी भलीभांति स्वाध्याय करेंगे तो वे सच्चे अर्थ में—"यथा नाम तथा गुणाः"—राष्ट्रहितैषी हो सकेंगे। आज हम 'राष्ट्रपति' शब्दकी ओर विज्ञ पाठकोंका ध्यान विशेषरूपसे खींचना चाहते हैं। राष्ट्रविज्ञ इस ओर ध्यान देंगे। राष्ट्रविज्ञ ही राष्ट्रका हित साधन कर सकते हैं। राष्ट्रसे अनभिज्ञ केवल राष्ट्रप्रेमावेशमें आकर राष्ट्रके लिए सर्वस्व समर्पण करने पर भी वे राष्ट्रका हित साधन नहीं कर सकते, फिर वे प्राणोंका भी क्यों न समर्पण करदें। राष्ट्रसभाके सदस्य वास्तवमें राष्ट्रविज्ञ होने चाहिएँ, न कि केवल प्रेमी। कहावत है कि प्रेम अन्धा होता है। प्रेम अन्धा होनेके कारण ही वह हितसाधनमें पूर्ण रूपसे समर्थ नहीं हो पाता। राष्ट्र-प्रेमीको राष्ट्रविज्ञता अवश्य ही प्राप्त करनी होगी, अन्यथा वह उन्मत्तप्राय होकर अहित साधन कर बैठेगा। श्री १०८ पूज्यपाद आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराजने श्रीराष्ट्रालोकमें कितना सुन्दर लिखा है—

> राष्ट्रदृष्टिं नमस्यामो राष्ट्रमङ्गलकारिणीम्।
> यया विना न पश्यन्ति राष्ट्रं स्वनिकटस्थितम्॥

[सर्वदा राष्ट्रका मङ्गल करना यह जिसका स्वभाव है उस राष्ट्रदृष्टिको हम प्रणाम करते हैं। जिस राष्ट्र-दृष्टिके न होने पर अपने सन्निकट होने पर भी राष्ट्रको कोई नहीं देख सकते हैं।] इस कारिकाका सविस्तर अर्थ इसके भाष्य श्रीराष्ट्रसञ्जीवनमें देखिये।

राष्ट्रविज्ञोंसे हम सविनय पूछते हैं कि कांग्रेसके अध्यक्षको राष्ट्रपति जो आप कहते हैं वह इसके गम्भीर अर्थकी ओर ध्यान देनेके अनन्तर कह रहे हैं? अथवा केवल प्रेमावेशमें आकर? विज्ञताके पलड़ेमें अन्धा प्रेम तो योग्य नहीं हो सकता। क्या इसके इष्टानिष्ट परिणामोंकी ओर कभी ध्यान दिया है? यदि नहीं दिया तो आप राष्ट्रका हित साधन किस प्रकार करेंगे? यदि आपने सम्यक् विचार किया है तो हम पूछते हैं कि आप अपने राष्ट्रको माता मानते हैं या स्त्री? राष्ट्रविज्ञ पुरुष राष्ट्रको स्त्री तो मान ही नहीं सकता, कारण राष्ट्र उसकी जन्मभूमि है। इसी लिए तो "वन्देमातरम्" राष्ट्रियोंका एक प्रधान जय घोष है। वर्तमान भारतमें सहस्रों तथा लाखों चित्र छप चुके हैं जिनमें भारतको भारतमाता के रूपमें सर्वत्र अङ्कित किया गया है, स्त्रीके रूपमें नहीं। भारतमाता भारतमाता कहकर उसके किसी पुत्रको पतिके रूपमें वरण करना या कराना जहां महान् अपराध माना जाना चाहिए था, वहां वैसा न कर उसको सगौरव आदर्श माना जाता है, क्या यह राष्ट्रविज्ञोंके सम्मुख लज्जाकी बात नहीं? क्या यह पागलपन नहीं? क्या यह नीचता या अधमता नहीं? यदि आप विज्ञ हैं तो अपने आदर्शको ठीक करिये, अपनी वाणीका सुप्रयोग करिये। योगदर्शनके सूत्रकार तथा व्याकरण महाभाष्यके प्रणेता महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि—

> "म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्।"

[हम म्लेच्छ न हो जाएँ इसलिए हमें व्याकरण अवश्य पढ़ना चाहिए] आगे श्रुति प्रमाण देकर वे कहते हैं—

> एकः शब्दः सुष्ठु प्रयुक्तः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।"

[एक भी शब्द उसके यथार्थ अर्थको समझकर उसका भली प्रकार प्रसङ्गानुकूल सदुपयोग किया जाय तो स्वर्गमें तथा इस लोकमें समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली कामधेनु स्वरूप होता है]

विज्ञ पाठकवृन्द ! आपको यह अवश्य जान लेना चाहिए कि राष्ट्रवादी पुरुष किसी भी राष्ट्रका पति होना अत्यन्त नीच कर्म समझता है; तथा वही राष्ट्रका पूर्ण हित साधन कर सकता है। जब कि किसी भी राष्ट्रका पति होना राष्ट्रवादीके सिद्धान्तमें नीच कर्म है तब जिस राष्ट्रमें वह स्वयं उत्पन्न हुआ है उस माताका पति बनने जैसा नीच कर्म वह कैसे कर सकेगा ? इसी कारण राष्ट्रवादी पुरुष अपनी मातृभूमिका दूसरोंको भी जो कि राज्यवादी संघवादी एवं व्यक्तिवादी हों— उनमेंसे भी किसी ऐसे पुरुषको ऐसे नीच कर्ममें प्रवृत्त देखकर तत्काल उनको विश्व-कल्याणके लिए इस कुकर्मसे दूर हटाकर सुख शान्ति स्थापित करते हैं। श्रुति कहती है—

"नाऽविष्णुः पृथिवीपतिः"

[अर्थात् जीव पृथ्वीका पति हो नहीं सकता]

किन्तु राष्ट्रवादसे विरोध रखने वाले अनार्य पुरुषोंने अपने स्वार्थ साधनके लिए इसका अर्थ ही बदल छोड़ा है। वे इसका अर्थ करते हैं कि—"पृथ्वी-पतिको विष्णु ही समझना चाहिए"। इसी प्रकारके निर्लज्ज धूर्त्तोंके किये हुए अनर्थोंसे आज संसारके भीतर घोर अशान्तिका साम्राज्य स्थापित हो रहा है। परन्तु एक समय अवश्य ही ऐसा आयेगा कि बहते पानीमें निस्नेह बालुकाकणोंके समान यह सारा अनर्थ साम्राज्य ढहकर बह जायगा, तभी चिरशान्ति भी होगी, वास्तविक अर्थ पर आरूढ़ होकर चलने वाले राष्ट्रवादी ही संसारमें शान्तिस्थापनामें समर्थ होंगे।

—हरदेव शर्मा त्रिवेदी, (सम्पादक)

उद्गार

कवयिता —
श्री कविराज डा० श्रीनाथ तिक्कू शास्त्री, ए. एम. एस. बी. एच. यू.

इस जीवनके यह सूने पल,
जानें कब जायें बीत सखे !
दलितों-सा जीवन भी अब तो,
जगतीमें बनता भार सखे ! ॥१॥

जगती है सारी न्यारी यह,
ना लगती प्यारी है उसको।
मन जिसका जलता रहता है,
जीवनके दुख से दीन सखे ! ॥२॥

इस जगके अपने-अपने अब,
बन जाते सपने सपने से।
चित-चञ्चल है पग डगमग है,
मग होता जाता दूर सखे ! ॥३॥

जब विरह-व्यथाके पावककी,
ज्वालाएं उठतीं धधक-धधक।
तब भस्म कसक भी होती है,
मिट जाती चितकी चाह सखे ! ॥४॥

ना भाते नाते हैं जगके,
ठुकराते जाते सब हम को।
हम किसके कौन हमारा है ?
है जग भी कैसा जाल सखे ! ॥५॥

'रे पथिक ! न रुक बस चलता जा
जीवनका बोझा ढोता जा।
यह देख निशाकर औ दिनकर,
चलते ही जाते निज पथ पर।' ॥६॥

रख उरमें मधुमय यह वाणी,
खेता निज जीवनकी नौका।
चलता मैं इस भवसागर में,
कर, करको ही पतवार सखे ! ॥७॥

दुष्पार महा भवसागर यह,
हैं भीषण जलचर भी कैसे ?
ना कूल किनारा लखता कुछ,
होगा अब कैसे पार सखे ! ॥८॥

जग हम पर हँसता हम जग पर,
हँसते औ रोते भी प्रतिपल।
यह दीवानी या मस्तानी ?
मैं तनिक न पाता जान सखे ! ॥९॥

आत्माऽनुभवके कुछ अंश

[यह लेख आजसे १२ वर्ष पूर्व श्री १०८ पूज्यपाद आचार्य चरणोंने लिखा था। उनके एक भक्तके पास सुरक्षित था उस प्रेमीने हमारे पास भेजा है। यह हमें अत्यन्त हितकर जान पड़ा अतः उक्त आचार्यचरणोंकी आज्ञा प्राप्त करके पाठकोंके लाभार्थ इसे हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक]

"शिवोऽम्" "शिवोरम्" "शिवोम्" इस प्रकार की ध्वनि निकली सो हृदयपर्यन्त अनायास पहुंच गई। उस ध्वनिसे हृदय भर गया। अब हृदय का कोई भी अंश ऐसा न रहा कि उसमें 'शिवोम्' की ध्वनि न हो। 'शिवोम्' के अतिरिक्त सारी बातें विस्मृत हो गई। ब्रह्माण्डसे उसकी जो प्रतिध्वनि हुई, वह इतनी विशाल थी कि सारा ब्रह्माण्ड ही 'शिवोम्' हो गया। परन्तु बाह्य-ध्वनि या प्रतिध्वनिमें जो विच्छेद एवं विरामादि दोष रहते हैं वे यहां नहीं थे। अब तो यह भी ज्ञात न होता था कि यह ध्वनि ही है या और ही कुछ है। साथ साथ इस बात का भी विस्मरण हो गया कि यह ध्वनि कब निकली। इस ध्वनिका उत्पत्ति स्थान तो पहले भी ज्ञात न था। ध्वनि समाप्त कब होगी, ऐसी तो इच्छा ही न होती थी, प्रत्युत चाह तो यही थी कि निरन्तर ऐसी ही ध्वनि बनी रहे। क्या यह ध्वनि समाप्त होगी ? यह शंका तो शुक्ति ज्ञानोत्तर रजतकी भांति हो गई थी। इस ध्वनिकी लम्बाई-चौड़ाईको कौन नाप सके ? काम तो यह कानों का ठहरा, किन्तु कानोंके कानोंको यह ध्वनि इतनी प्यारी लगी कि वे उन्मत्त हो गये और अपन काम-काज करना ही छोड़ बैठे। लोग कहते हैं, नहीं नहीं, पदार्थ-विज्ञानवादी तार्किकंमन्य भी कहते हैं कि ध्वनि यह कानों का ही विषय है, पर वराक (बेचारे) वे इस ध्वनि को किस भांति पहचानें। जबकि उन्होंने इस शिवध्वनिको कभी सुना ही नहीं, तो फिर उनका दोष ही क्या हो सकता है। अजी तार्किकंमन्यों ! क्या आप इस ध्वनिको सुनना चाहते हैं ? यदि चाहते हैं तो यन्त्रोंको फेंक दीजिये; इस ध्वनिको सुननेके लिये किसी यन्त्रकी आवश्यकता नहीं है; केवल प्रेममय हृदयभरकी आवश्यकता है और तो क्या यह तुम्हारे दोनों कान भी जब तक बाहरी ध्वनिके लेनेको कोलाहल मचा रहे हैं, तबतक तुम इस ध्वनि को नहीं सुन सकते। इन कानोंको सर्वथा चुपचाप बैठनेको कहना होगा। यदि ये बबुआ बच्चा से न मानें तो इनके पैरों में बेड़ियां डालनी पड़ेंगी, अस्तु।

वास्तव में यह ध्वनि केवल कानोंसे सुननेकी ही है, ऐसी बात नहीं है; इसे तो नासिका सूंघ सकती है, जीभ चाट सकती है, आंखें देख सकती हैं, त्वक् इसे छू सकती है, तो भी इसके टुकड़े नहीं करने पड़ते। अजी टुकड़े तो हो ही नहीं सकते, फिर किस भांति किये जायँ। भरे तालाबमें पड़े पानीसे भरे बड़े बड़े भी घड़े क्या पानीके टुकड़े करते हैं या कर भी सकते हैं ? आकाशमें सावकाश प्रकाश रहने वाले घट, पट, तट, मठ क्या आकाशके शकल (टुकड़े) बना सकते हैं ? कपड़े में काला पीलापन, लम्बा चौड़ापन, खर्दरा चिकनापन, भारी हल्कापन, मोटा पतलापन ये परस्पर पृथक् पृथक् होते हुए भी क्या इकट्ठा नहीं रहते ? क्या उन्हें कपड़ेके टुकड़े करने पड़ते हैं ? अजी ! उनकी शकल (अस्तित्व) ही कहां कि वे अपने अधिष्ठानके शकल (टुकड़े) करें ? अजी ! वे नरपशुओंके समान कृतघ्न थाड़े ही हैं ? कि जिसके सहारे वे रहते हैं, जिसके भरोसे उनकी चमक दमक है एवं जिसीके आश्रयसे अनुत्तर आनन्द लूटते हैं, उसीके शकल (टुकड़े) बनाएँ ? अजी ! जाने दो इन बातोंको उदाहरण तो कभी समाप्त ही नहीं होनेके।

वाह ! वाह !! यह कैसी विलक्षण ध्वनि है शिवोम्

शिवोम् शिवोम् । इस ध्वनि ने हृदय के तो कोने कोने भर ही डाले, पर नाकको करोड़ों नाकें उत्पन्न हो गईं तौ भी ये तृप्त होना या थकना नहीं जानतीं । तृप्त होने पर भी अतृप्तिजन्य दुःखका तो यहां नाम लेश भी नहीं है । कारण, शिवोम् ध्वनिरूपी पदार्थ अनन्त भोगशक्ति अनन्त एवं समय भी अनन्त ।

अच्छा लीजिए जीभकी भी दशा सुन लीजिए; पता नहीं किस योगीश्वरसे जिह्वादेवीने कायव्यूहविद्या सीखी, पर सीखी अवश्य, देखिये शिवोम् ध्वनिका रस ले लेनेके लिये दौड़ ही पड़ी। उसने देखाकि यहां एक से काम न होगा तो तुरत उसने कायव्यूह विद्यासे करोड़ों शरीर बनाकर रसपान जन्य आनन्द लूटना प्रारम्भ कर ही दिया । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज तो सोलहसहस्र एकसौ आठ राजा ही हुए थे पर शिवोम् ध्वनिको पीनेके लिए कोटि कोटि रसनाओंके स्वरूप रसनाने बना लिये, क्या यह आश्चर्य नहीं है ? सोलहसहस्र एकसौ आठ रानियोंके लिए सोलहसहस्र एकसौ आठ राजा होना तथा एक शिवोम् ध्वनि को पीनेके लिए कोटिकोटि स्वरूप बना लेना इन दोनों बातोंमें भला कितना अन्तर है ? अन्तर, बड़ा ही अन्तर जी ! तभी तो रसनेन्द्रियको ही सब इन्द्रियोंमें प्रबल इन्द्रिय भगवान् व्यासदेव अपने श्रीमद्भागवतमें कहते हैं ।

नयन तो आज किसी ओर भी देखना नहीं चाहते हैं, जबसे शिवोम् ध्वनिको देखा है तबसे मारे आनन्दके ऐसी टकटकी लगा दी है कि मानो चित्रके लिखे ही नयन हैं । यदि शिवोम् ध्वनिकी प्रतिच्छाया इनके मध्यमें न दीख पड़ती तो इनको चित्र ही कहना पड़ता । वास्तवमें तो यह बात है कि इन नयनोंमें इतना तेज चमक रहा है कि इस तेजने एक शिवोम् ध्वनिको छोड़ सारा छिपा दिया है । यद्यपि तार्किक लोगोंको यहां शंका होगी कि तेजका काम तो प्रकाशित करना है न कि छिपाना । पर भाई ! ये तो तार्किक ही ठहरे । इन तार्किकोंको ये अनुभव रूपी अपूर्व नयन मिले ही कहां हैं। जो नयन शिवोम् ध्वनि को देखते हैं उन्हींमें सारे पदार्थोंको छिपानेका तेज भी होता है । ये तार्किक दूसरोंकी परीक्षा करने जाते हैं, पर अपनी परीक्षा नहीं करते । करें भी क्या अपनी परीक्षामें इनके नयन तिमिरावृत हो जाते हैं । अजी छोड़ो हमें उन नाना पदार्थसार्थ की परीक्षा करने वालों से क्या काम । हम तो अपनी परीक्षाके आनन्द-सागरमें मग्न रहने वाले हैं जो अपनी परीक्षा न करके दूसरोंकी परीक्षामें लगता है, उसको तो अपने घर जलती आग देखकर दूसरों के घरकी झूठी आग बुझाने जाने वाले मनुष्य की भांति अपना रहने का ठिकाना गवां कर अन्तमें रोना पड़ता है; अस्तु ।

जब नयनोंने अपने सारे काम छोड़कर 'शिवोम्' ध्वनि-दर्शनका आनन्द लेना प्रारम्भ कर दिया, तब पलकोंने भी अपना काम छोड़ दिया । इनके काम छोड़ बैठनेसे नयनोंको लाभ ही हुआ । निरन्तर दृष्टि से दर्शन तो कर सके । नयनों की यह दशा देखते ही विन्नियोंने वहांसे सीधे प्रस्थान करके 'शिवोम्' ध्वनि रूपी-प्रासाद में आनन्द-रूपी पलङ्ग पर निद्रा लेना ही सर्वोत्तम समझा । समझा ही केवल नहीं, किन्तु लेटकर खुर्राटें भी भरने लगीं । इधर नयनोंकी यह दशा उधर त्वचाकी दशा कुछ और-सी ही थी, उसका भी वर्णन सुनिये । त्वचाने 'शिवोम्' ध्वनिका पहली ही बार जो गाढ़ालिङ्गन किया, सो अब छूटना कल्पान्त में भी सम्भव नहीं ऐसा जान पड़ता था । जिस प्रकार अति चिर-प्रवास से लौटकर घर आए हुए अपने प्राणप्रिय प्रियतम पतिदेवको पतिव्रत परायणा रमणी गाढ़ालिङ्गन करके फिर छोड़ना नहीं चाहती, पर वहां तो दूसरोंका भला बहुत न सहने वाली, दूसरोंकी लाज वर्तमान रहनेके कारण आलिङ्गनको छोड़ना ही पड़ता है। यहां तो लज्जाका आदर ही नहीं । इसी लिए लज्जाने अपने अनादरके कारण 'शिवोऽम्' ध्वनि-रूपी समुद्रमें डूब मरना ही अच्छा समझा । समझा ही नहीं, अन्तमें डूब ही तो मरी । जिस त्वचा के आश्रयसे यह जीने वाली वह त्वचा ही जब इसे डुबाना चाहने लगी तो इसका डूबना ही अच्छा था ।

दूसरे यह भी बात थी कि इसको बचाना भी कोई चाहता न था। अब तो त्वचाने यथेच्छालिङ्गन सुख भोगना ही अपना कर्तव्य समझा, था भी तो यही कर्तव्य। इधर मनने पहले पहले चाहा कि यह सूचना औरों को भी दूँ, पर बेचारेका मन ठिकाने न था। वह तो इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ होगया था। क्या करूं, क्या न करूं, इस बात को सोचते-सोचते थक गया। ज्योंही त्वचाकी निर्लज्जता प्रकट करना चाहने लगा, त्योंही वाचाने मुख बन्द कर लिया। जिह्वाकी कृति पर विचार करने लगा कि यह क्या करने लग गई, पर कुछ स्थिर न कर सका। कारण बुद्धिकी बुद्धि कुण्ठित हो गई थी। नाकने तो साफ फटकार बता दी कि जा जा चुपचाप बैठ, स्वयं तो उन्मन होगया और मुझे सिखाने आरहा है। नयन तो नयन ही ठहरे। उन्होंने अपने रश्मियोंसे खूब कस कर बांध सीधे 'शिवोम्' ध्वनि-रूपी कारागारमें नयन करके सदाके लिए मनको बन्द कर दिया। अजी नयन ही तो ठहरे। नयन नाम भी तो इनका इसी लिए रक्खा गया कि नय=न्याय, न=नहीं, अर्थात् जहां न्याय नहीं। नयनको चाहे सीधेसे कहिये या टेढ़ेसे, वे नयन ही रहेंगे। उस समयकी एक और आनन्ददायक बात भी आपको कहता हूं। मनने देखा कि ये नयन हैं, यहां सीधेसे काम न चलेगा तो उलटकर सीधा नमःनमः करने लगा, क्योंकि 'दुर्जनं प्रथमं वन्देत्' ऐसी नीति है। पर नयन मनके नमः में थोड़े ही फँसने वाले थे। वे तो इसकी चालाकी समझ ही गये थे, उन्होंने 'शिवोम्' ध्वनि-रूपी कारागारमें मनको डाल ही दिया, पर मनकी नमः नमः की रट तो चली ही थी, उसपर नयनों ने 'नय' नहीं ही किया और ऊपरसे एक झाड़ भी दे डाली कि अयि! चालाक चञ्चल मन! तुमको यहांसे कभी न निकलने देंगे। क्योंकि जब तुम बाहर रहते हो तो हमें बहुत बुरे बुरे कामों में लगा देते हो। मनमाना काम कराते हो। मन पहिले तो वहां से बाहर आनेके लिए नमः नमः करता था, पर जब कारागार को अच्छी प्रकार देखा तो वह आनन्दातिरेक से दो-तीन बार नमः नमः करके चुप हो गया। उसने देख लिया कि यह कारागार वैसा कारागार नहीं है, किन्तु यह तो शिव-प्रासाद है। अब उसने सोचा "नयन" इस नाम का अर्थ जहां 'नय' नहीं ऐसा नहीं है। वास्तवमें नयन=ले जाने वाला =शिवप्रासादमें ले जाने वाला यह अर्थ है। फिर नयनोंके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिए तीन-चार बार पुनः मनने नमः नमः किया और मनन करने लगा। इधर नयनोंको तो 'शिवोम्' ध्वनि देखनेके अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था। पाणिपादपायूपस्थोंको तो यह भी पता न था कि हम कहां हैं। हैं या नहीं हैं, इस बातको भी सोच न सकते थे क्योंकि मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, नाक, जीभ, आंख, त्वचा, कान ये सभी शिवोम्-ध्वनिमें विलीन हो गये थे। वाणी तो पहले ही सबोंकी बन्द हो गई थी। इस समय एक 'शिवोम्' ही 'शिवोम्' सर्वत्र भरा था। 'शिवोम्' ने सबको एक कर डाला। जब तक कुछ सूक्ष्म भेद ज्ञान भी था, तब तक यह जो कुछ लिखा वह सोचा भी जाता था, पर जब वह भी भेदज्ञान मिट गया, तब पता नहीं क्या हो गया। हां, इतना पता है कि जाड्य नहीं था, क्योंकि व्युत्थानके अनन्तर सारी अनुभूत बातोंका स्मरण हुआ। जाड्य तो सुषुप्तिमें रहता है और वहां तो "मैंने कुछ भी नहीं जाना" इस प्रकार की अनुभूति रहती है तो क्या था इसका उत्तर इतना ही है कि :—

अभिनवरमणीयं सच्चिदानन्दकन्दं
स्वनवनवविलासोल्लासनैकप्रवीणम्।
अनुभवसुरहस्यं मङ्गलं मङ्गलाना--
मधिहृदिपरमेशं मौनमेवाऽऽश्रयेऽहम्॥

--अ० वा० आचार्य

कीर्तनकी महत्ता

[लेखक—वैद्यराज श्री पं० विष्णुस्वरूपजी शास्त्री]

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्तिह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

भगवान्की पूजा या भजन या सेवा आदि सब बातें भगवान्के श्रद्धा प्रेमसे कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो सकती हैं। क्योंकि भगवान् प्रेमस्वरूप हैं। भगवान् ज्योतिःस्वरूप हैं। भगवान् शान्तिस्वरूप हैं। भगवान्, प्रेम, शान्ति, सत्य, ज्ञान, आनन्द, और सत्-सभी पर्यायवाची शब्द ही हैं। अथवा संक्षेपमें हम यह भी कह सकते हैं कि वह अद्वितीय परमतत्त्व जो अन्तर्यामी रूपसे आपकी हृदय-गुहामें सदा विराजमान हैं, जो आदि मध्य और अन्तरहित हैं। और प्राणिमात्र क्या विश्वभरमें व्याप्त हैं, वे स्वतन्त्र, स्वयं प्रकाश हैं। उन भगवान्का श्रद्धा प्रेम द्वारा कीर्त्तन या स्मरण ही भजन है। कीर्तन या भजन ही उपासना है। इस कलिकालमें इससे अच्छा सुगम उपाय भगवत् प्राप्तिका और कोई नहीं हो सकता। हरिकीर्तन ही भगवत्प्राप्तिका सबसे सुगम और सुलभ उपाय है। प्रभुप्रेमाभिलाषी जितनी उच्चसे उच्च भावनासे हरिकीर्तन करेंगे उनको उतना ही शीघ्र भगवत्प्रेमी बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मेरे अनुभवसे तो जो अवस्था योगीजन सतत अभ्यास द्वारा अनेक वर्षोंमें प्राप्त करते हैं वह अवस्था प्रभु प्रेमीभक्त हरिकीर्तनमें शीघ्र प्राप्त कर लेता है। उसकी विषय-वासनाओंकी ओर दौड़ने वाली वृत्तियां भगवान्के ध्यान और चिन्तनमें लीन हो जाती हैं। उस समय उसके लिये विश्वब्रह्मांड ही श्रीवृन्दावनका परम धाम बन जाता है। उसका शुद्ध मन ही सेवाकुञ्ज बन जाता है। प्रत्येक समयमें प्रत्येक प्राणिके अन्दर वह अपने इष्ट परमात्मदेव आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावन बिहारीके साथ बिहार करता रहता है। भगवान्का कीर्तनकरने वाला प्रेमीभक्त परम प्रेमरूपा पराभक्तिकी प्रेमसमाधि या विरहासक्तिकी प्रेमरतिमें चिरमग्न हो जाता है। ऐसे सौभाग्यशाली अनन्य प्रेमी भक्तके लिए फिर बाह्य षोड़शोपचार पूजा आदि कोई बंधन नहीं रहता।

प्रभु-प्रेमियों ! यदि आप पके हुए मीठे आमका मधुररस चाखना चाहते हो तो प्रेम-पूर्वक हरिनाम रूपी आमोंका कीर्त्तन द्वारा रस चूसिए। पेड़ गिनने वा पेड़की पत्तियोंसे क्या काम। हृदयकी पवित्रता चाहते हो तो हरिकीर्त्तनसे बढ़कर और कोई भी सुगम सुलभ उपाय नहीं है। यही समय है प्रभु मिलनेका; मनुष्य शरीर बारम्बार नहीं मिलता। इस दृश्यमान जगत् और इसके विविध प्रपञ्च भरे विषयानन्दमें उस नित्यानन्द या प्रेमानन्दका आभास लेशमात्र भी नहीं है। इस बहिर्मुख दृश्य जगत्के विषयानन्दमें जो सुख प्रतीत होता है वह भ्रान्तिसुख है। मृगतृष्णावत मायावी जादूगर के इन्द्रजालका पेड़ सहित पका हुआ आम है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धका मिथ्या प्रसार मयावी जाल है। ये सब इन्द्रियों की खुजलाहट कामलिप्सा वासना मात्र है। अथवा यों कहिए अन्तःकरण रूप, मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकारकी जलती हुई भट्टी है। प्यारे भाइयों! इन सबकी औषधी यदि कोई है तो केवल भगवद्भजन या कीर्तन ही है। भगवान्का नाम सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण सभी कर्मों और आधिभौतिकादि तीन पापोंका और मनके मल, विक्षेप तथा आवरण तीनों दोषोंका आत्यन्तिक नाश करता है। प्रभुका भजन ही भक्तको उस परम धामकी प्राप्ति कराता है, जिसको गीतामें भगवान् ने कहा है "तद्धाम परमं मम" वहां पर प्रेमी भक्त भगवान्के सभी दिव्य-ऐश्वर्यों का भोग करता हुआ भगवत् स्वरूप ही हो जाता है। अतएव प्रभु-भक्तों ! भगवद्भक्ति प्राप्त करनेके लिए

अपने सब (भगवान्के गीतामें बतलाये हुए) दैवी सम्पदाके गुण बर्तते हुए दृढ़ व्रत धारण करके हरि-नाम कीर्तन द्वारा भगवान्के प्यारे बन जाओ। हरि कीर्तनमें उस अनन्त नामवाले भगवान्का किसी भी नामकी ध्वनि द्वारा मनमें नित्य स्मरण कीर्त्तन होता रहे। एक क्षणको भी नाम जिह्वा परसे न उतरे। खाते पीते चलते फिरते जैसी भी दशामें रहो उसी दशामें नाम स्मरण होता रहे और अपने भगवान्का सर्वत्र मनमें सदा विराजमान देखो,वह कहां नहीं हैं ? "जहं न होय तहँ देहु कहि तुमहीं देखावऊँ ठाऊ"। जो भी कुछ तुम्हें दिखाई दे वह सब उन्हींका रूप है और उन्हींका नाम है। वस्तु मात्रमें प्रत्येक प्राणिमें सर्वत्र उसे ही देखो। उस अनन्त भगवान्को देखना और प्राप्त करना ही हमारा ध्येय है। इस मनुष्य जन्म मिलनेका यही कारण है। यह अवसर बार २ हाथ नहीं आता। एक मात्र उस दयालु भगवान्को नाम स्मरण कीर्त्तन ध्यान और चिन्तन होता रहे। "भजहु राम सब काम बिहाई" निष्काम भावसे सब में अपने परम प्रेमास्पद प्रभुका ही ध्यानकर प्राणिमात्र की सेवा करो। सेवा करना ही सच्चा भजन है। विश्व प्रेम ही सच्ची उपासना है अतएव संसारमें ऐसा कोई भी न हो जिससे तुम प्रेम न करो। विश्वमें ऐसा कोई भी स्थावर या जंगम चर या अचर प्राणि न हो जिसके प्रति तुम्हारी सहानुभूति प्रीति या दयाका भाव न हो। सदा चञ्चल रहनेवाले मन और इन्द्रियों को और अतृप्त रहने वाली चित्त वृत्तियोंको रोककर प्रभु भजन चिन्तन कीर्तनमें लगा दोगे तो तभी कुछ प्रभुके मिलनेकी आशा होगी। हरिकीर्तन ये साधारण सा ही साधन नहीं है। श्री श्री श्री चैतन्य महाप्रभुने इस कीर्तन द्वारा ही प्रभुको प्राप्त किया और अन्य भक्तों ने भी। हरिकीर्तन करने वालोंको अवश्य इन नियमों का पालन करना चाहिए। सदाचार, दया, नम्रता, स्वार्थत्याग झूठको छोड़कर सत्य पालन, इन बातों-का नियम पालन करने वाला प्रभु प्रेमाभिलाषी भक्त शीघ्र प्यारे प्रभु को प्राप्तकर सकता है।

भक्तको यह विश्वास होना चाहिए- भगवान् कहीं दूर नहीं हैं वे प्रतिक्षण तुम्हारे पास हैं और वे तुम्हारा सप्रेम स्वागत अभिनन्दन करनेके लिए और प्रेमपूर्वक गाढ़-आलिङ्गन करनेके लिए बांह पसारे सदा तैयार हैं। प्यारों! डूब जाओ उनके अनन्त प्रेम-सिन्धुकी उत्ताल तरंगोंमें नही तो हाथ पसारे ही रह जाओगे। पीलो मधुररस भरा यह अमृतरसका प्याला इसमें खूब गोते लगाओ और तल्लीन हो जाओ-आनन्दकन्द सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान्की उस रूप माधुरीमें। उसके नामको अपने कण्ठका चन्द्रहार बनालो। उसके अनन्त मधुर नामकी यह मणिमाला सदा अपने हृदयकी अन्तरतम गुहामें ही चिरकालके लिये धारण कर रक्खो। उसका नाम कीर्तन, गुण-कीर्तन, लीला कीर्तन प्रतिश्वास पर होता रहे। अपने इस—

"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे"
"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे"

भगवन्नामको शरीर की जोंक बना लो जोकि छुड़ाये भी न छूटे। हां एक बार अपनी हृदयतन्त्रीको भली भांति झन्कारते हुये अत्यन्त प्रेमभरे हृदय और करुणापूर्ण स्वरसे उन्मत्त होकर निष्काम भावसे कहोगे तभी आनन्दकी प्राप्ति होगी और दूसरोंको भी तभी आनन्द आयेगा। केवल लोगोंको रिझानेके लिये नाच गाकर प्रभुको रिझाना चाहोगे तो प्रभु नहीं रीझेंगे लोग देखने वाले चाहे रीझ जांय। इस कलिकालमें यह हरिकीर्त्तन ही सार द्रव्य है और भगवत्प्राप्तिका सुगमसे सुगम उपाय है। नहिं नहिं अपितु यों कहना चाहिये- परम प्रेमरूपा भगवद्भक्तिका अमृतगीत संकीर्तनरूप दूधका परम-पावन और रसभरा मधुर नवनीत है उन नवनीत चोर-आनन्दकन्द भगवान् कृष्णचन्द्र व्रजचन्द्रका। इसे सब भक्त मिलकर लेलो, लूटलो, प्रेमपूर्वक पीलो, पीलो और पिलालो किसी भी प्रकार इस मधुररसको पीकर भगवान्की प्राप्ति करलो। यही उद्योग होना चाहिये इस मनुष्य जीवनका।

———

मानव-जीवन एक पहेली है

[लेखक :—श्री "अरुण"]

"मनुष्य एक मिट्टीका पुतला है जो विश्वके प्रांगण में अपना सुन्दर एवं सुषमासहित नृत्य दिखाता हुआ सृष्टिके आदि कालसे चला आरहा है। इसके सजातियोंने अपने अथक परिश्रमसे इस पुतलेकी उलझी हुई गुत्थीको इतना ही सुलझा पाया कि मानव जीवन एक पहेली है, उलझन है और मनुष्य एक मिट्टीका पुतला है।"

यदि विचार-पूर्वक इन शब्दोंकी आलोचना करने का प्रयत्न किया जाय तो सम्भव है कि अन्तमें प्रत्येक विचारशील प्राणिको उपरोक्त वाक्यकी द्विरावृत्ति करनी पड़ेगी। परन्तु फिर भी इसकी अन्वेषणा करने से मानवके सम्बन्धमें अनेक गूढ़ रहस्योंका ज्ञान हो सकेगा। सबसे प्रथम हमें इस बातकी व्याख्या करनी होगी कि मनुष्यको मिट्टीका पुतला क्यों बताया गया। धार्मिक दृष्टिकोणसे मानव क्षणभंगुर है और यह बात प्रत्यक्ष भी देखी जाती है। भगवान्कृष्णके शब्दों में "जो संसारमें उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।" साधारण शब्दोंमें कहा जा सकता है कि:—

"आये हैं सो जायंगे, राजा-रंक-फ़कीर।"

कविकी दृष्टिमें राजा, रङ्क और फकीर सभी नाशवान् हैं। चाहे राजाके पास अनन्त ऐश्वर्य और असंख्य योद्धाओंका संग्रह क्यों न हो, परन्तु फिर भी वे सब उसे मृत्युके मुखसे नहीं बचा सकते। अतः इस पाञ्चभौतिक नाशवान् शरीरके लिए यह कह देना कि मनुष्य एक मिट्टीका पुतला है, कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सन्त कविके शब्दोंमें इस पंक्तिका अनुवाद निम्न प्रकारसे भी किया जा सकता है:—

"पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा जस तारा परभात॥"

कविने मानवको पानीके बुलबुले और तारोंके साथ चित्रित किया है जो मिट्टीके पुतले से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उसकी दृष्टिमें मिट्टीका पुतला फिर भी स्थायी है; पानीका बुलबुला अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता। प्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि 'जायसी' के शब्दोंमें भी इन पंक्तियोंका समर्थन किया गया है:-

"पानी महँ जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात विलाइ॥"

आधुनिक कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्माने तो इसकी क्षण भंगुरता के विषयमें मानो कलम ही तोड़ डाली है। वे इसे एक ही रूपमें चित्रित कर मानवकी क्षण भंगुरताका अपमान नहीं करना चाहतीं। वे तो इससे भी अधिक मार्मिक उक्तियों द्वारा तीव्ररूपसे उसका समर्थन करती हैं।

इन्द्र धनुष-सा घन अन्चल में,
तुहिन बिन्दु-सा किसलय दल में,
करता है पल पल में देखो,
मिटने का अभिमान।
सिकतामें अंकित रेखा-सा,
वात-विकम्पित दीप शिखा-सा,
काल कपोलों पर आंसू-सा-
ढुल जाता हो म्लान।"

इन सभी विचारोंको सामने रखकर यह कहा जा सकता है कि मनुष्यके जीवनका कोई विश्वास नहीं, चाहे जिस समय हमारे प्राण-पखेरू इस पिंजरेको छोड़कर जा सकते हैं। महात्मा कबीरने कहा है:—

दस द्वारेका पींजरा, तामें पंछी पौन।
रहिबेको अचरच महा, जाय तो अचरज कौन॥

संसारीको मृत्युके सम्बन्धमें आश्चर्य होता है, परन्तु कबीर देह-स्थितिको ही एक आश्चर्य जनक घटनाके रूपमें देखते हैं। वे कहते हैं कि अनेक छिद्रों से परिपूर्ण इस शरीर-रूपी ट्यूबमें प्राणवायु किस

प्रकार रहती है ? अतः कहा जा सकता है कि इसकी गतिविधिका संकेत एकमात्र किसी अज्ञातशक्तिके हाथमें है जिसका कोई नामकरण नहीं किया जा सकता। परन्तु फिर भी वेदान्तियोंने इसे ब्रह्मके रूप में चित्रित किया है।

आधुनिक युगका तार्किक मस्तिष्क फिर भी जीव और ब्रह्मकी अन्वेषणा किये बिना विरत नहीं हो सकता। अतः यह कहना होगा कि समुद्रके दो पहलू हैं (१) शान्तमहासागर, जिसमें किसी प्रकारका ज्वार नहीं आता और (२) तरंगायित समुद्र जो मायाके वायुरूपी आवरणसे आन्दोलित हो उठता है। ऐसी स्थितिमें मानवका भी दो रूपोंमें विचार किया जा सकता है। इस कथनको सरलता से समझानेके लिए कबीरदासजी ने कहा है:—

"जल बिच कुम्भ, कुम्भमें जल है, बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तथ कह्यो गियानी ॥"

वे जीव और ब्रह्मकी स्थितिको समझाने के लिए सूर्यके प्रतिबिम्बका दृष्टान्त देकर उस ब्रह्मको सूर्यके बिम्बकी भांति एक रूपमें ही मानते हैं। जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब भिन्न भिन्न वस्तुओंमें दृष्टिगोचर होता हुआ भी वह बिम्बरूप से एक ही है, उसी प्रकार इस संसार का प्रत्येक प्राणी भी परब्रह्म परमात्माकी दिव्य ज्योतिसे प्रकाशमान है और उसके एक ही आत्मा-रूपी अलौकिक सूत्रसे बँधा हुआ है।

ऐसी स्थितिमें यह कहा जा सकता है कि मानव क्षणभंगुर और ब्रह्म दो रूपोंमें हमारे सामने उपस्थित होता है। क्षणभंगुरवादियोंकी दृष्टिमें भी इसके उत्थानकी झलक दिखाई देती है। वे इस जीवनकी क्षणभंगुरता का संकेत करते हुए स्वयं अपने विषय में सोचने समझने का अवसर देते हैं और ब्रह्मवादी भी अपने सतत उद्योग एवं अध्यवसाय से इसके कल्याणमें निरत हैं। परन्तु फिर भी तार्किक इसे आत्म-विश्वासके आधार पर न छोड़कर तर्क-रूपी बाणोंसे भेद देना चाहते हैं, चाहे फिर वह सत्य जिसे शास्त्रोंमें, सत्य और शिवका रूप दिया गया है, क्षत-विक्षत होकर विकृत ही क्यों न हो जाय। परन्तु फिर भी स्वभावानुसार उनके हृदय में यह शंका आविर्भूत होती है कि जब मानव ब्रह्म है तो फिर वह पतनकी ओर क्यों जाता है ?

समाधानकर्ता न तो ब्रह्मके अस्तित्वको जानता है और न अपने। परन्तु फिर भी वह तार्किकको समझानेके लिये कह देता है कि जिस प्रकार तूंबेका धर्म जलपर तैरना है, परन्तु उसपर आवश्यकतासे अधिक मिट्टी लग जाने से वह जलमें डूब जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक प्राणिकी अवस्था है और वह ब्रह्म होते हुए भी मायाके आवरणसे अपने आपको देख नहीं सकता कि मैं कौन हूं ? तथा इस संसार में आने का मेरा क्या प्रयोजन है ? परन्तु जैसे पानीकी हिलोरोंसे तूम्बेपर लगी हुई मिट्टी धुल जाती है और फिर वह क्रमशः जलके ऊपरी भागमें आकर अपने नाम और गुणको चरितार्थ करता है। वैसे ही जब यह जीव भी ज्ञानरूपी पानी की तरंगों से मायारूपी मिट्टीको धो डालता है तो उसकी मुक्ति हो जाती है अर्थात् वह इस दुःखमय संसारके बन्धनोंसे छुटकर आनन्द-रूपता को प्राप्त करता है।

समाधानकर्ता ने मानव और ब्रह्मकी स्थिति बतलानेका आवश्यकतासे अधिक प्रयत्न किया परन्तु फिर भी इससे तार्किक का समाधान न हो सका। वह फिर सोचने लगा कि तूम्बा तो जड़ है, वह कभी अपमें ऊपर स्वयं कीचड़ नहीं लपेट सकता जब तक उसपर कीचड़ लपेटनेवाला कोई इतर प्राणी न हो और उसपर किसी कारणवश मिट्टीका आवरण आ भी सकता है क्योंकि वह जड़ है, उसमें हानिलाभके अनुभव करनेकी शक्ति नहीं है। परन्तु ब्रह्म तो सत् चित् और आनन्दस्वरूप है फिर उस सर्वशक्ति-सम्पन्न ब्रह्म पर मायाका प्रभाव कैसे पड़ सकता है ?

तार्किक और समाधानकर्ताने बुद्धिवादके अनुसार जीव और ब्रह्मका विचार करना चाहा, परन्तु समस्या अपना जटिल रूप धारण करती चली गई। अन्तमें उन्हें यही कहना पड़ा कि 'मानव-जीवन एक पहेली है और मनुष्य एक मिट्टीका पुतला है जिसका वर्णन वाणीसे बाहिर, मन से अगोचर और सजातीय बन्धुओंके सामर्थ्यसे बाहरकी बात है।

पितृलोकका समयविभाग और श्राद्ध-रहस्य

[लेखक—विद्याभूषण विद्यावागीश श्री प्रो० दीनानाथजी शर्मा शास्त्री सारस्वत]

[इस लेखके विद्वान् लेखक अपनी मौलिक रचनाएँ प्रायः संस्कृत पत्रोंको दिया करते हैं, 'श्रीस्वाध्याय'के प्रेमी पाठकोंके हितार्थ अब आपने हिन्दीमें भी लिखना आरम्भ किया है इसके लिए हम आपके अत्यन्त आभारी हैं । आपका यह लेख विलम्बसे प्राप्त होनेके कारण 'ग्रीष्मांक' में न जा सका अब इस अंकमें आ रहा है, आशा है विज्ञ पाठक इससे लाभ उठावेंगे। — सम्पादक]

मृतक-पितृश्राद्ध प्रतिमास अमावास्यामें हुआ करता है; इसमें साधारण पुरुषोंको सन्देह हुआ करता है कि—महीनेमें एक बार ही पितरोंको भोजन क्यों ? और अमावस्या को क्यों ? अथ च श्राद्धका मृतकोंसे क्या सम्बन्ध ? । इस विषयमें यदि 'श्रीस्वाध्याय' के पाठक विस्तीर्ण विचार देखना चाहें; तो वह काशीके 'सूर्योदय' नामक संस्कृत मासिक पत्रमें मेरे लेखमें देखें। संक्षेपसे कुछ यहां भी लिखा जाता है—

"मासेन स्याद् अहोरात्रः पैत्रः" १।७।२१ इस अमरकोषके तथा "पित्र्ये रात्र्यहनी मासः" १।६६ इस मनुस्मृतिके प्रमाणानुसार मनुष्योंका एक मास पितरों का एक दिन-रात होता है। इस प्रकार प्रतिमास पितृश्राद्ध करने पर पितरोंको वह भोजन प्रति दिनकी भांति प्राप्त होता है। कृष्णपक्षमें श्राद्ध इसलिए करना पड़ता है—

"कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः, शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी" मनु० १।६६

अर्थात् हमारा कृष्णपक्ष पितरोंका दिन होता है, हमारा शुक्लपक्ष उनकी रात्रि।

उसका कारण यह है, सिद्धान्तशिरोमणिके गोलाध्यायमें त्रिप्रश्नवासनाके १३वें पद्यमें कहा है—

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः
स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति ।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे
दर्शे यतोऽस्माद् द्युदलं तदैषाम् ॥

निष्कर्ष यह है कि पितृलोक चन्द्रलोकके ऊपर है। जब शुक्लपक्षमें चन्द्रमा हमारे इस लोकमें प्रकाश कर रहा होता है; तब वह सूर्यसे दूर होता है; तब पितृलोकमें १५ दिन तक निरन्तर रात्रि होती है। जब हमारे यहां कृष्णपक्ष होता है; तब हमारे इस लोकमें चन्द्रमाका प्रकाश नहीं होता। तब चन्द्रलोक सूर्यके निकट होता है। उस समय पितर पन्द्रह दिन तक निरन्तर सूर्यको देखते हैं—अतः उनका एक निरन्तर दिन होता है।

अमावास्यामें जब सूर्य और चन्द्रमा एक राशिमें होते हैं; तब हमारे अपराह्णकालमें सूर्य चन्द्रमाके ठीक सिर पर होता है। उस समय चन्द्रलोकके ऊपर रहने वाले पितरोंका भोजनका समय (मध्यान्हकाल) होता है। इस लिए हम अमावास्याके अपराह्णमें जो प्रति मास पितृश्राद्ध करते हैं—उस समय पितरों-के मध्याह्नकाल होनेसे उन्हें भोजन ठीक प्राप्त हो जाता है।

यहां पितृलोकका समय विभाग इस प्रकार जानना चाहिए—

पितृलोक चन्द्रलोकके ऊपर है—यह बताया जा चुका है। चन्द्रमामें अपना प्रकाश नहीं है, वह सूर्यकी सुषुम्णा नामक एक किरणसे प्रकाशित होता है—यह बात निरुक्तादिमें प्रसिद्ध है। हमारी पूर्णिमा में सूर्य चन्द्रलोकसे विपरीत दिशामें बहुत दूर (छः राशिके अन्तरमें) होता है। तब चन्द्रलोक पर विद्यमान पितृलोकमें पूर्ण रात्रि होती है; तब पितर निद्रा

में होते हैं। फिर कृष्णाष्टमी तक पितरोंका सूर्योदय-काल होता है, क्योंकि—कृष्णाष्टमीमें सूर्य चन्द्रलोक से थोड़े अन्तरमें रहता है, अतएव उसमें सूर्यका प्रकाश पहुंचना प्रारम्भ हो जाता है।

अमावास्याको वर्णन पहिले हो ही चुका है कि—जिस प्रकार सूर्य जब हमारे ठीक सिर पर होता है, उस समय हमारा मध्यान्हकाल माना जाता है, इसी भांति सूर्य भी अमावास्यामें ठीक पितरों के सिर पर होता है। इससे विपरीत शुक्लपक्षकी अष्टमी तक पितृलोकका सायंकाल होता है। पितर मध्यान्हमें ही एक बार भोजन करते हैं—अतः सायङ्कालमें फिर उनकी अशनक्रिया नहीं होती; तब श्राद्ध भी नहीं होता। पूर्णिमाका वर्णन पहले हो ही चुका है।

हमारा तीस दिनका जो मास होता है, उतना ही समय पितरोंका सामान्यतया २४ घण्टात्मक काल समझना चाहिये। इस गणनासे हमारी जो एक तिथि अर्थात् एक दिन होता है, वह उनके ४८ मिनट मध्यभागके रूपसे जानने चाहियें। इसी प्रकार हमारा जो एक घण्टा होता है, उसे पितरोंका दो मिनटका समय जानना चाहिए। इस अन्तरका कारण सूर्यका अन्तर है। जिस सूर्यको हम रात्रिके व्यवधान से तीस वार देखते हैं, उसीको पितर लोग रातके व्यवधानसे एक वार निरन्तर देखते हैं। हमारा सवादिन होने पर पितरोंका एक घण्टा बीता हुआ समझना चाहिये। हमारे तीस मिनट बीतने पर उनका एक मिनट समय बीता हुआ जानना चाहिये।

अब हम नीचे समयविभाग उपस्थापित करते हैं, जिससे प्रतीत हो जाएगा कि—हमारी अमुक अमुक तिथि होने पर पितरों की घड़ीमें इतना इतना समय होगा। 'श्रीस्वाध्याय' के पाठक सावधानतासे देखें—

शुक्लपक्षकी तिथि		पितरोंके घण्टा मिनट
१	मध्याह्न	.... १२—४८
२	,,	.... १—३६
३	,,	.... २—२४
४	,,	.... ३—१२
५	अपराह्ण	.... ४—०
६	,,	.... ४—४८
७	,,	.... ५—३६
८	सायम्	.... ६—२४
९	,,	.... ७—१२
१०	रात्रि	.... ८—०
११	,,	.... ८—४८
१२	,,	.... ९—३६
१३	,,	.... १०—२४
१४	,,	.... ११—१२
१५ (पू०)	मध्य रात्रि	.... १२—०

कृष्णपक्षकी तिथि		पितरोंके घण्टा मिनट
१	मध्यरात्रि	.... १२—४८
२	,,	.... १—३६
३	,,	.... २—२४
४	,,	.... ३—१२
५	उषाकाल	.... ४—०
६	,,	.... ४—४८
७	,,	.... ५—३६
८	प्रातः	.... ६—२४
९	,,	.... ७—१२
१०	दिनम्	.... ८—०
११	,,	.... ८—४८
१२	,,	.... ९—३६
१३	,,	.... १०—२४
१४	,,	.... ११—१२
३० (अमा)	मध्याह्न	.... १२—०

इस समयविभागसे—

पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
कर्म चेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी॥

(मनुस्मृति १।६६)

यह सनातनधर्मका सिद्धान्त वैज्ञानिक होनेसे सत्य सिद्ध हुआ। उसी पितृलोकमें यहांसे मरकर प्राप्त हुए हमारे पितरोंकी स्थिति होती है। उनके नियमानुसार उनके मध्याह्न समय हमें भोजन पहुंचाना चाहिए। उसके दो प्रकार हैं। एक प्रकार यह है कि—पितरोंके नामसे अग्निमें हवि विधिपूर्वक डाल दी जाए। दूसरा प्रकार यह है कि—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" यजुर्वेद ३१।११
"मुखादग्निरजायत" यजु: ३१।१२

इस प्रमाणसे अग्निके सहोदरभूत ब्राह्मणकी जठराग्निमें पितरोंके नामसे हवि डाला जावे।

इस भांति करनेसे पूर्व प्रकारसे साक्षाद् अग्नि, दूसरे प्रकार से—

'ब्राह्मणो ह वा इममग्निं वैश्वानरं बभार' गोपथब्राह्मण १२।२०

इस प्रमाणके अनुसार ब्राह्मणस्थ अग्नि उस हविको सूक्ष्म करके पितरोंको पहुंचा देती है। पितर भी उस सूक्ष्म हविसे तृप्त हो जाते हैं, क्योंकि—वे भी सूक्ष्मशरीरात्मक होते हैं। इस कारण उनके लिये स्थूलसे सूक्ष्म रूप हुए भोजनकी आवश्यकता होती है, उसीसे ही उनकी तृप्ति होती है।

इसको यों समझना चाहिए कि—हम स्थूलभोजन अपने मुखके द्वारा अपनी जाठराग्निमें हुत करते हैं। हमारी जाठराग्नि उस स्थूल भोजनको सूक्ष्म करके, हमारे सूक्ष्म अन्तरात्माको समर्पित कर देती है। उस सूक्ष्म तत्त्वसे हमारा सूक्ष्म आत्मा तृप्त हो जाता है। इस समय हमारी वही अग्नि स्वयं ही इस कामको कर रही होती है; हमें वहां पर कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती; इसी प्रकार सूक्ष्म पितर भी हमसे दिये हुए स्थूल भोजन के—अग्नि वा ब्राह्मणकी अग्नि द्वारा किये हुए सूक्ष्मतत्त्वको प्राप्त करके तृप्त हो जाते हैं। वहां पर ब्राह्मणकी अग्नि महाग्निके साथ मिलकर स्वयं ही वह कार्य कर रही होती है; उसके लिए ब्राह्मणको कोई व्यापार नहीं करना पड़ता।

यही मृतकश्राद्धका रहस्य है- जिसे न जानकर सन्देहैकधन लोग विप्रतिपत्तिएं उठाकर अपनी अल्पश्रुतताका परिचय दिया करते हैं। अग्नि पितृलोकस्थ पितरोंको सूक्ष्म-हवि कैसे दिया करता है—यह बात अथर्ववेदके अट्ठारहवें काण्डमें ठसाठस भरी हुई है। यह हुई मृतक-मासिक-श्राद्धकी बात। जो शरदृतुमें वार्षिक श्राद्ध हुआ करता है- वह विशिष्ट-बात है। तब भाद्रपदकी पूर्णिमासे आश्विनकी अमावस्या तक सब तिथियोंमें भिन्न-भिन्न पितर भोजन किया करते हैं। जिस प्रकार हमें कभी २ विशिष्ट विवाहादिके पर्वके अवसर पर रात्रिके १२-१-२ बजे भी भोजन करना पड़ता है, वैसे ही पितरोंका वार्षिक श्राद्ध भी पार्वण होनेसे उस समय पितर लोग भिन्न भिन्न रात्रिदिन आदिके समय भी भोजन प्राप्त करते हैं।

यदि जीवित श्राद्ध माना जावे, तो प्रतिमासमें २६ दिन जीवित-पितरोंको भूखा रखना पड़ेगा। उस पक्षके मानने पर अमावास्यामें मासिकश्राद्ध विधान करनेमें कोई शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक उपपत्ति नहीं हो सकती। इस कारण जीवितश्राद्ध-पक्ष भी निराधार है।

अब कई भिन्न२ विद्वानोंके मतानुसार श्राद्धविधिमें उपपत्ति वर्णितकी जाती है। आर्यसमाजिक विद्वान् पं० रघुनन्दनशर्मा अपनी विशालकाय 'वैदिकसम्पत्ति' पुस्तकके ३७१ पृष्ठमें लिखते हैं—

"मनुष्य पुत्रोत्पन्न करके ही पितृऋणसे उऋण होता है, इसलिए पुत्रकाम मनुष्य पितृपिण्डयज्ञके द्वारा अपने पितरोंको हविष्यान्नमें आकर्षित करके वह हवि स्त्रीको खानेके लिए देवे।"

किन्तु प्रश्न यह है कि— चान्द्रलोकसे जीवोंको किस प्रकार खींचा जाय? जीवोंके खींचनेकी वही विधि है जो सूर्यकान्तमणिके द्वारा सूर्यतापके खींचनेमें और चन्द्रकान्तमणिके द्वारा चान्द्रजलके खींचनेमें प्रयुक्त किया जाता है। जिसप्रकार चन्द्रकांतके प्रयोगसे चांद्रजलकी प्राप्ति होती है, उसीप्रकार चांद्रपदार्थोंको एकत्रित करनेसे चांद्रवीर्य भी आकर्षित होता है।

चांद्रवीर्यमें ही जीव रहते हैं। इसलिए उन पदार्थोंमें खिंच आते हैं जो चन्द्राकर्षणके लिए विधिसे एकत्रित किए जाते हैं। वे पदार्थ दूध, घृत, चावल, मधु, तिल रजतपात्र, कुश और जल हैं। यह प्रक्रिया शरत्-पूर्णिमाके दिन लोग करते हैं। परन्तु विधिपूर्वक क्रिया तो पितृश्राद्धके ही समय होती है। पितृश्राद्ध अपराह्नके समय होता है। उसमें घृत दूध मधु कुश आदि सभी पदार्थ रक्खे जाते हैं। पितरोंका प्रतिनिधि पुत्र अथवा पौत्र भी उन पदार्थोंको छूता हुआ वहींपर बैठता है; इसलिए यह सब हवि आदि सामग्री उसी प्रकारका यन्त्र बन जाती है जिस प्रकार चन्द्रमणि। इसीमें पितर खिंचकर आते हैं—

"परायात पितरः सोम्यासो" अथर्व० १८।४।६३

हविपिण्ड सूंघने अथवा खानेसे वीर्य और गर्भ में जाते हैं। शतपथ-ब्राह्मण १४।४।२।२६ में लिखा है कि- जो प्रजाकी इच्छा रखता हो, वह पितृयज्ञ करे। यजुर्वेद २।२३ में लिखा है कि इस पुरुषकी तरहके आकाशस्थ कुमार पितर गर्भधारण करते हैं। गृह्यसूत्रमें इसी मन्त्रके लिए लिखा है—इस 'आधत्त' मंत्रको कहकर बीचके पिण्डको पत्नी खाजावे। यही बात मनुस्मृतिमें भी लिखी है कि- 'पतिव्रता धर्मपत्नी' अर्थात् पितृ-पूजनमें रत, पुत्रकी इच्छा रखने वाली पतिव्रता स्त्री, बीचका पिण्ड खावे- इस प्रकारसे यह पुत्रेष्टियज्ञकी क्रिया पितृपिण्डश्राद्धके अन्दर घुसी पाई जाती है। पृ० ३७१-३७२

दश दिन तक मृतकके लिए दशगात्रादि कृत्यमें पिण्ड निर्वापित क्यों किए जाते हैं—इसे श्री पं० सूर्यनारायण शास्त्री व्याकरणाचार्यके शब्दोंमें देखिये-

"पितर लोग चन्द्रके ऊर्ध्वभागमें रहते हैं" शास्त्र के इस प्रमाणके अनुसार मृतपितरोंके सूक्ष्म शरीर अपने स्थानमें प्राप्त होनेके लिए चंद्ररश्मियोंसे खिंचकर चंद्रकी ओर ऊपर उठते हैं। वहां पर

"अन्नमयं हि सौम्य! मनः, आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्" ६।६।५

इत्यादि छान्दोग्य उपनिषद्के अनुसार अन्न-तेज जलादि तत्त्वप्रधान अन्तःकरण 'चन्द्रमा मनसो जातः, यजु० ३१।१२ इस कथनसे स्वसमान जातिवाले चंद्रकिरणोंसे खेंचा जाता है। परन्तु बहुत दूर जानेके कारण मार्गमें वायु धूप आदिसे मृतात्माका सौम्य अंश क्रमशः क्षीण होता जाता है। तब चंद्ररश्मिकृत आकर्षणके मूल सोमभागके थोड़ा होजानेसे आकर्षण शक्ति थोड़ी होजानेके कारण वह अन्तःकरण चंद्रलोक में न प्राप्त होकर मार्गमें ही कहीं विलीन होजावे वा किसी भिन्न दिशामें चला जाय, यह आशंका बराबर बनी रहती है तो नियत स्थान प्राप्त न होनेसे उस सूक्ष्म देहकी अपगति हो सकती है।

तब यवचूर्ण जल घृत मधु आदिसे सम्पादित पिण्ड सूक्ष्मांशोंसे उसीप्रकार चंद्रकिरणोंसे खिंचकर उसी मार्गसे चढ़ते हुये मृतात्माके सूक्ष्म शरीरमें सोम सामर्थ्यको उत्पन्न करतेहुए उसे अपने गन्तव्य स्थान चंद्रलोकमें प्राप्तकरा देते हैं। मृतक मनुष्यके शरीरावयवोंसे उत्पन्न पुत्रादि सपिण्ड जब उन पिण्डोंको निर्वापित करते हैं, तो उनके हाथोंके सम्बन्धसे निकले हुए सूक्ष्मांश उनके पितरोंके शरीरांशोंसे मिलते हैं, अन्यों से नहीं। क्योंकि आकर्षण अपने समान जातियोंसे ही सङ्गत होताहै। इसी वैज्ञानिक रहस्यको लक्ष्य करके प्रतिदिन निर्वापित किए पिण्डसे दश दिन तक दशगात्र किए जाते हैं।

प्रतिवर्ष क्षयाहकी तिथिमें श्राद्ध किया जाता है, उसमें भी कारण यह है कि- तिथि चान्द्रमासानुसार हुआ करती है। उस तिथिमें वे पितर चान्द्रलोकमें उसी मार्गमें स्थिति होते हैं, जब वे मृत्युको प्राप्त हुए उस तिथिमें उस स्थानको प्राप्त हुए थे। तब वे सूक्ष्म अग्निसे प्राप्त कराये हुए श्राद्धके सूक्ष्मांशको अनायास प्राप्तकर लेते हैं। इसलिये याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है—

मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्।
प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्य एकादशेऽहनि॥

(आचाराध्याय श्राद्ध प्रकरण २५६ श्लो०)

यही बात बोधायनीय पितृमेध शेषसूत्रके ३ खंडमें भी कही है—

"वर्षे वर्षे मृततिथौ श्राद्धं कुर्यात्"।

अब श्राद्धके विषयमें श्री पं० कालूराम शास्त्रीके शब्दोंमें उपपत्ति बताकर प्रकृतनिबन्ध समाप्त किया जाता है—"श्राद्धके समय पृथिवीमें कुश रक्खे जाते हैं, उनपर जौ चावल आदिके पिण्ड रक्खे जाते हैं। पिण्डोंपर जौ तिल दूध और शहद डाला जाता है। तब श्राद्धकर्ता नित्य पितरोंका यम वा परमेश्वरका ध्यान करता है, और आचार्य वेदमन्त्रोंका उच्चारण करता है। अब जानना चाहिये कि- चावलोंमें ठन्डी बिजली है, और यवोंमें भी ठंडी बिजली होती है। इधरसे तिलों और दूधमें गर्म बिजली होती है। साधारण पुरुष जब बोलता है, तब उसके शरीरमें बिजली कम उत्पन्न होती है। परन्तु जब कोई नियत पदप्रयोग परिपाटीवाले तथा नियत-आनुपूर्वीवाले वेदमन्त्रोंको पढ़ता है, तब नाभिचक्रसे उठी हुई वायु मनुष्यके शरीरमें गर्म बिजुलीको पैदा करती हुई उस बिजलीको शरीरसे बाहर कर देती है। इधर शब्द द्वारा ब्राह्मणके शरीरसे अलौकिक वैदिक क्रिया सिद्ध विद्युत् भी पिण्डोंपर पड़ती है। इसपर बिजलियोंके समूह होजाने पर उनको मिलानेवाली मधुकी विद्युत् होती है। कुश,पिण्डोंके नीचे इसलिए पृथ्वीपर रक्खे जाते है कि- पिंडोंकी विद्युत् कहीं पृथ्वीमें न चली जाय। कुश विद्युत् प्रवेशको रोक दिया करते हैं। तभी भगवान् श्रीकृष्णने ध्यानके समयमें ध्याताके विद्युत्की रक्षाके लिये 'चैलाजिनकुशोत्तरम्' ६।११ इस प्रकारके आसनका उपदेश दिया है।

मधुके द्वारा बिजलियें मिलाने पर जो एक अलौकिक-बिजली उत्पन्न होती है; वह श्राद्धकर्ताकी मानसिक शक्तिसे उधर जाती है- जहां उसका मन जाता है। उसका मन नित्य पितर, यम अथवा परमेश्वरके ध्यानमें गया होता है। तब वह बिजली भी इनके पास जाकर चमकती है। तब दिव्यपितर यम अथवा परमेश्वरके सर्वज्ञ होनेसे, वे श्राद्धकर्ता पुत्रके पितरके पास, चाहे वह पितृलोकमें हो चाहे लोकान्तरोंमें भिन्न भिन्न योनिमें हो, उसकी योनिके अनुरूप फलको भेज दिया करते हैं।

इस प्रकार मासमें पितरोंका एक बार भोजन क्यों? अमावास्याको क्यों? श्राद्धका मृतकोंसे क्या सम्बन्ध? इन सब प्रश्नोंके हल होजानेसे प्रकृत निबन्ध यहीं समाप्त किया जाता है। इस विषयका साङ्गोपाङ्ग ज्ञान यदि पाठकोंको अपेक्षित हो तो वे मेरा 'मृतकश्राद्धसिद्धि' नामक संस्कृत निबन्ध काशीके 'सूर्योदय' पत्रमें देखें।

दुलार !

[श्री 'अरुण']

तेरे मनमें मेरा दुलार !
तुम निद्रित-सी अरमानोंमें,
आती हो इस धूमिल-तट पर,
ले करमें चन्द्र-सुधा गागर,
अम्बरके सूने पन-घट पर,
तारोंसे तान लगाती-सी-
तुम हो प्रकाश मैं अन्धकार !

तेरे मनमें मेरा दुलार !
तुम जागरूक मैं स्वप्नशील,
तुम उर्मिल-सर मैं व्यथित मीन,
मैं एक पथिक हूं लक्ष्य-हीन,
तुममें सारी वसुधा विलीन,
तुम हो वसन्त मैं पतझड़ हूं,
इन पागल प्राणोंकी पुकार !

आहोंकी घनमालामें तू, प्राणोंकी मृदु ज्वालामें तू,
जागरण स्वप्न-सी मोहमयी-विस्मृतिमें तू हालामें तू,
मेरे स्वप्निलसे कानोंमें, कहता है कोई बार-बार।

विजयादशमीसे रामलीलाका सम्बन्ध

[लेखक—श्री पं० रघुनाथदत्तजी 'बन्धु' शास्त्री विद्यालंकार]

पञ्चाङ्गोंमें विजयादशमीके दिन सरस्वती विसर्जन, अपराजिता पूजन, शमी पूजन, सीमोल्लङ्घन, राजचिन्हपूजन, ध्वजारोपण, राजपट्टाभिषेक और बुद्धजयन्ती तो लिखी रहती है। परन्तु आश्चर्यकी बात है कि विजयादशमी कहते ही हमारे यहां सर्वसाधारणके मनमें सबसे पहले जिस बातका ध्यान आता है, वह रामलीला या रावण-दाह तो दूर रहा श्रीरामपूजन भी कोई पञ्चाङ्गकार अपने पञ्चाङ्ग में नहीं लिखता, अपितु इस देशके छोटे-बड़े सभी नगरोंमें प्राय: "रावण-दाह" किया जाता है और विजयादशमी कब है ? यह पूछने तथा बतलाने वाले दोनों ही प्रकारके लोगोंमें भी सौमेंसे निन्यानवेके मनमें उससे रावण-दाहका मेला ही अभिप्रेत होता है। शमीपूजन आदि तो स्यात् कोई बिरला ही पूछता होगा। परन्तु विजयादशमी कब होनी चाहिये ? इस का निर्णय करते समय भी पञ्चाङ्गकार शमीपूजन, अपराजितापूजन ही नहीं, यहां तक कि राजपट्टाभिषेक विषय श्लोकोंके अनुसार भी पूर्वविद्धा — पर विद्धादशमीका विचार करते हैं, किन्तु वे श्रीराम सम्बन्धी किसी बातके देखनेका कष्ट नहीं उठाते। यही कारण है कि दृष्टिकोण एक न होनेसे कई पञ्चाङ्गोंमें इस बार विजयादशमी रविवार आश्विन प्रविष्ट २ को लिखी है और किसीने सोमवार आश्विन ३ प्रविष्टको विजयादशमीका मेला लिख दिया है। इस प्रकार उनके दो दृष्टिकोणोंने इस बार मेले भी दो बना दिये हैं, अस्तु। कुछ लोग तो इसका यह उत्तर दिया करते हैं कि जब निर्णय-सिन्धु, धर्मसिन्धु, व्रतराज, व्रतार्क तथा पुरुषार्थ-चिन्तामणि आदि धर्मशास्त्रके निबन्ध प्रन्थोंमें रामलीलाका उल्लेख ही नहीं तो वह लिखा कहांसे जाय ? — उन महानुभावोंसे मेरा निवेदन है कि वर्षके ३६५ दिनोंमें "व्रतकोश" के अनुसार १६२२ व्रतोत्सव हुआ करते हैं। इन सभीका वर्णन किसी एक पुस्तकमें होना अत्यन्त कठिन है। इस लिए निर्णय-सिन्धु आदि उक्त पुस्तकोंमें यदि रामलीलाका वर्णन नहीं तो इस का कदापि यह अभिप्राय नहीं कि इतनी प्रसिद्ध प्रथा जो हमारे प्रान्तके नगर २ तथा ग्राम २ में अति प्राचीन कालसे प्रचलित है, वह निर्मूल होगी। इसका भी वर्णन शास्त्रोंमें है और उन्हीं शास्त्रोंके आधार पर देश भरमें उसका प्रचार हुआ है। मैं समझता हूं कि जिन धर्मग्रन्थोंमें वह वर्णन है, उनमेंसे विजयादशमी के दिन रावण-दाह आदि रामलीला तथा रामपूजनके यहां कुछ थोड़ेसे प्रमाण देना पाठकोंके लिए अरुचिकर न होगा।

विजयादशमीं ज्ञात्वा रामलीलानुसारिणम्।
आश्विनस्य सितेपक्षे सीमातिक्रमणोत्सवम् ॥३२॥
श्रीरामं रथमारोप्य सर्वानुकरणैः सह।
समतिक्रामयेद्ग्रामं स्वसीमानं विधानतः ॥३३॥
रावणादि विजयाय सीतालक्ष्मण संयुतम्।
रामलीलां समुद्दिश्य रावणादि वधादिकम् ॥३४॥

(निम्बार्क व्रतनिर्णय, पृ० १६६)

निम्बार्कव्रत-निर्णयके इन श्लोकोंका भाव यह है कि आश्विन शुक्लपक्षकी दशमीको नगरके बाहर रामलीलाका उत्सव हो। उसमें शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण आदिको रावण पर विजय करने के लिए लोग लेजायें और रावण-वध तक वहां रामलीला करें। इसी प्रकार धर्मशास्त्रके महानिबन्ध "रणवीरव्रतरत्नाकर" में नारदपुराणके वचन उद्धृत कर यों लिखा है—

आश्विने शुक्लदशमी विजया सा प्रकीर्तिता।
दश-गोमय-पिण्डांस्तु प्रातर्न्यस्य गृहाङ्गणे।
चक्रवाल-स्वरूपेण तन्मध्ये रामलक्ष्मणौ ॥

तथा भरत-शत्रुघ्नौ संपूज्यश्चतुरोऽपि हि ।
नमस्कृत्वाथ भुंजीत द्विजान्संभोज्य पूजितान् ॥
रणवीर व्रतरत्नाकर आश्विन पत्र १०३

अर्थात्—विजयादशमीके दिन प्रातःकाल अपने घरके आंगनमें श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चारोंकी पूजा तथा नमस्कार करके सम्मानपूर्वक ब्राह्मणोंको खिला कर उसके अनन्तर अपने परिवार परिचित तथा परिजनोंके साथ भोजन करे। इसी प्रकार एक दूसरी जगह लिखा है कि—

रथमारोप्य देवेशं सर्वालंकारभूषितम् ।
सासि-तूण-धनुर्बाण-पाणिं नक्तचरान्तकम् ।
रथैरश्वैर्गजैः पद्भि स सौमित्रि हरीश्वरैः ॥
युतं रामं हृदि-ध्यायन् शमीवृक्षे प्रपूजयेत् ।
गीत-वादित्र निर्घोषैर्युतोदेव-गृहं नयेत् ॥
कैश्चिदुच्चैस्तत्रभाव्यं कोसलेन्द्रस्य तुष्टये ।
निर्जिता राक्षसा-दैत्या वैरिणो जगती तले ॥
रामराज्यं रामराज्यं रामराज्यमिति ब्रुवन् ॥
(रणवीरव्रतरत्नाकर आश्विन पत्र ७८)

इन श्लोकोंका यह अभिप्राय है कि — विजयादशमीके दिन भगवान् रामकी प्रसन्नताके लिए — रथ, हाथी, घोड़े और प्यादोंके सहित राम-सेनाका स्वांग बना कर लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् आदिसे युक्त राक्षसोंका संहार करने वाले भगवान्को सभी प्रकारके आभूषणोंसे भूषित कर उन्हें धनुष, बाण, तूणीर तथा तलवार पहनाकर रथ पर चढ़ाए, फिर हृदयमें भगवान्का ध्यान करते हुए नगरके बाहर उसी ठाठ-बाटसे लेजाकर अपराजिताके समीप उस अपराजित रामका पूजन करे। इसके अनन्तर बाजे बजाते, गीत गाते और आनन्द मनाते हुए लोग भगवान्को मन्दिरमें ले जाएं और वहां आकर कहें कि राक्षस और दैत्योंकी हार हुई अब संसारमें राम-राज्य है! राम-राज्य है!! राम-राज्य है!!! इस प्रकार रामलीलाकी विधि निबन्ध-ग्रन्थोंमें पाई जाती है।

अब देखना यह है कि विजयादशमीके दिन श्रीरामचन्द्रने क्या किया था जिससे उस दिन रामोत्सव करनेका शास्त्रोंमें विधान है। कालसारमें लिखा है—

दुर्गोत्सवान्तर वैष्णवर्क्षे, तिथौ दशम्यामपराजितायाम् ।
रामो जिगीषुर्दशदिक्षुवेधं कृत्वा जगामरिपुपुरं प्रवीरः ॥
(कालसार पृष्ठ १२३)

इसका तात्पर्य यह है कि—आश्विन शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको श्रवण नक्षत्रमें श्रीरामचन्द्रजीने लङ्का पर चढ़ाई की थी। हेमाद्रि तथा मदनरत्नसे उद्धृत कश्यप ऋषिका वचन देकर निर्णयसिन्धु और व्रतराजने भी इस बातकी इस प्रकार पुष्टि की है। वहां लिखा है—

श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः ।
(निर्णयसिन्धु कृ०भ०पृ० ६७४ और व्रतराज पृ० ३४६)

अर्थात्—श्रीरामचन्द्रजीने विजयादशमीके दिन श्रवण नक्षत्रमें प्रस्थान किया था। क्योंकि विजयादशमीके दिन भगवान्ने रावण पर चढाई की थी, अतः इस उत्सवके मनानेका एक तो यह कारण हुआ। दूसरे कालिकापुराणमें लिखा है कि—

ततस्तु त्यक्त निद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते ।
जगाम नगरीं लङ्कां यत्रासीद्राघवः पुरा ॥२५॥
व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं ततः ।
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ॥
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः ।
ततः संप्रेषिता देवी दशम्यां शाबरोत्सवैः ॥
(कालिकापुराण अध्याय ६२ । पृ० १६०)

इसका सार यह है कि आश्विन शुक्लपक्षकी नवमीके दिन श्रीरामचन्द्रजीने रावणको मारा और दूसरे दिन विजयादशमीको विजयोत्सव मनाया गया। इस प्रकार कालसार तथा कालिकापुराणके वचनोंसे भली प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामचन्द्रजी ने आश्विन शुक्ल दशमीके दिन लंका पर चढ़ाई की। वहां वर्ष भर युद्ध होता रहा। लगभग एक वर्षके अनन्तर आश्विन शुक्लपक्षकी नवमीके दिन श्रीरामने रावणको मारा और दूसरे दिन विजयादशमीको उत्सव मनाया गया। बस तभीसे लंका पर चढ़ाई की और उस विजयके स्मारक रूपमें विजयादशमीके दिन राम-भक्त जनता रामलीला करती चली आई है।

श्रीहनुमज्जयन्ती

[लेखक—श्री पं० रघुनाथदत्तजी 'बन्धु' शास्त्री विद्यालंकार]

रामायणमें लिखा है, कि भगवान् रामने हनुमान् जीको कहा — तुम्हारे उपकारोंका बदला मैं कैसे चुकाऊं ? तुम्हारे एक २ उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दे सकता हूं। परन्तु मेरा यह जीवन एक है और तुम्हारे उपकार अनेक हैं। किसी एक उपकारके लिए जान दे भी दूं तो भी शेष अनेक उपकारोंके लिए मुझे तुम्हारा ऋणी रहना ही पड़ेगा। वे फिर सोच कर बोले—मुझे तुम्हारे किसी भी उपकारका बदला देनेका अवसर ही न मिले। मैं तुम्हारा सदा ऋणी ही बना रहूं, यही मेरी हार्दिक इच्छा है। क्योंकि किसी पर विपत्ति आने पर ही तो उसे दूसरोंसे सहायताकी आवश्यकता पड़ती है। अतः न कभी तुम पर विपत्ति आए जिससे तुम्हें सहायताकी आवश्यकता पड़े और न ही मैं तुम पर प्रत्युपकार करके तुम्हारे ऋणसे कभी मुक्त हो सकूं।

स्कन्दपुराणमें श्रीरामने बतलाया है कि मुझे हनुमान्के बलसे ही लङ्का-विजय, सीता, राज्य, मित्र, बन्धु-बान्धव तथा प्यारे लक्ष्मणका जीवन प्राप्त हुआ है। वहां यहां तक लिखा है कि—

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वैधसोऽपिवा।
श्रूयन्ते तानि कर्माणि यादृशानि हनूमतः॥
स्कन्द० आवं० अ०७६। १५।

अर्थात् जो कार्य काल, इन्द्र, विष्णु और ब्रह्मासे किये हुए भी न नहीं सुने गए वे हनुमान्जीने किये हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि जो कार्य ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र और काल भी नहीं कर सके उनको करने वाले हनुमान् कौन हैं ?

नारदीय तथा स्कन्द पुराणमें लिखा है कि—

हरिरूपः शंकरात्मा मारुति कपिरुत्तमः।
(बृहन्नारदीयपुराण पू० खं० अ० ७६। ६१)

चिरंजीवतुदीर्घायुर्वानरो हनुमान् सदा।
अंजनी गर्भसंभूतो रुद्रांशो हि धरातले॥
(स्कन्दपुराण अव० अ० ७६। ६)

इन पुराण वचनोंसे सिद्ध होता है कि हनुमान्जी शंकरका अंशावतार हैं। अतः सभीके परमोपकारक उस देवाधिदेव महादेवके अवतार श्रीहनुमान्जीकी जयन्ती मनाना हमारा परम कर्तव्य है परन्तु वह जयन्ती कब होती है, यहां इस पर थोड़ा-सा विचार करना है।

धर्मशास्त्रके निबन्ध ग्रन्थोंके अनुसार हनुमज्जयन्ती कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको होनी चाहिये और कई एक पञ्चाङ्गकार अपने पञ्चाङ्गोंमें वैसा लिखते भी हैं, परन्तु जैनधर्मके २४वें तीर्थंकर श्रीमहावीरजी का जन्म चैत्रमें हुआ था। इधर हमारे हनुमान्जीका नाम भी महावीर ही प्रसिद्ध है। इसी नाम साम्यके भ्रममें पड़ कर एक-आध आधुनिक संग्रहकारने अपनी पुस्तकमें भ्रमसे हनुमान्जीका जन्म चैत्रमें लिख दिया हुआ है। कुछ एक पञ्चाङ्गकार धर्मशास्त्रों को न देख कर इन्हीं छोटी-छोटी आधुनिक पुस्तकोंके आधार पर चैत्र पूर्णिमाको हनुमज्जयन्ती लिख दिया करते हैं। उनकी इस असावधानीका यह फल हुआ है कि हनुमज्जयन्तीके विषयमें बड़ी गड़बड़ सी होरही है, क्योंकि किसी पञ्चाङ्गमें वह चैत्रमें लिखी है. किसीमें कार्तिकमें और किसी २ में तो चैत्र तथा कार्तिक दोनोंमें लिखी रहनेसे हनुमज्जयन्तीका उत्सव मनाने वाले श्रद्धालु लोग भ्रममें पड़ कर यह निश्चय नहीं कर सकते, कि इन तीनों पञ्चाङ्गोंमें कौनसा ठीक है ? जिसके अनुसार यह उत्सव मनाया जाय। पञ्जाबमें सनातनधर्म प्रतिनिधि सभाके साथ ३२५ महावीरदल सम्मिलित हैं और प्रतिनिधि सभाके प्रयत्नोंसे नित्य नये महावीरदल स्थापित भी होते ही

रहते हैं। ये सभी महावीरदल हनुमज्जयन्तीका उत्सव मनाना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं। क्योंकि प्रायः पञ्जाबमें अधिकतर महावीरदल ही हनुमज्जयन्तीका उत्सव मनाते हैं; इस लिए इन्हें ही इस विषयमें अधिक भ्रम भी होता है, कि उत्सव चैत्रमें मनाया जाय या कार्तिकमें। कारण यह कि एक पञ्चाङ्ग उन्हें कुछ बतलाता है और दूसरा कुछ कहता है। कहीं २ जिन ग्रामोंमें एक ही पञ्चाङ्ग होता है और यदि उसमें चैत्रमें हनुमज्जयन्ती लिखी हो तो जब बिचारे उत्सवकी तैयारी करके प्रतिनिधि सभा को पत्र लिखते हैं, तब उन्हें पता लगता है कि उत्सव चैत्रमें नहीं किन्तु कार्तिकमें मनाना चाहिए। इन्हीं बातोंको देख कर पञ्जाब सनातनधर्म प्रतिनिधि सभाकी विद्वत्परिषद्ने संवत् १९९५ में विज्ञप्ति निकाली थी कि हनुमज्जयन्ती कार्तिकमें मनाई जाया करे। उस विज्ञप्तिका आधार निम्नलिखित वचन थे —

आश्विनस्यासिते पक्षे भूतायां च महानिशि।
भौमवारेऽञ्जनीपुत्रं हनुमन्तमजीजनत्॥
(रणवीरव्रत रत्नाकरे कार्तिक पत्र १४)

ऊर्जस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः।
मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भाच्छिवः प्रादुरभूत्स्वयम्॥
(उत्सवसिन्धुः॥)

यमेवदिवसे ह्येषगृहीतुं भास्करंसुतः।
तमेवदिवसं राहुर्जिघृक्षतिदिवाकरम्॥
(बाल्मीकीय रामायण॥)

चतुर्दशी कार्तिक वदी शुभ घटिका शनिवार।
तादिन तुम प्रकटे सुनहु बीच सकल संसार॥
(तुलसी रामायण किष्किंधा काण्ड॥)

अब पुनः सभी पञ्चाङ्गकारोंसे अनुरोध है, कि वे उपरिलिखित प्रमाणोंके अनुसार अपने २ पञ्चाङ्गोंमें कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन ही हनुमज्जयन्ती लिखनेकी कृपा किया करें जिससे जनता द्वैधमें न पड़ जाय।

दीपावलीकी बधाई

'श्रीस्वाध्याय'की ओरसे द्वितीयवर्षारम्भ के उपलक्ष्यमें हम अपने सम्मान्य संरक्षकों, सहायकों, सहयोगियों, ग्राहकों और हितैषियोंको इस शुभावसर पर दीपावलीकी बधाई देते हैं। जगज्जननी मां लक्ष्मीकी कृपासे यह दीपोत्सव उन सबके लिए सर्वप्रकारसे मङ्गलमय और यशस्वी जीवनका द्वारोद्घाटन करनेवाला सिद्ध हो। —सम्पादक।

आओ माँ!

आओ मां! तुम यहां आती हुई इतना सकुचाती क्यों हो? क्या इस लिए कि अब यह भारत एक हजार वर्ष पूर्वका भारत नहीं रहा? उस समयका भारत — जब लोग अपने देशके लिए, अपने धर्मके लिए, अपनी स्नेहमयी जननीके दूधकी लज्जा रखने के लिए मर मिटते थे? क्या इस लिए कि अब यह वह स्वतन्त्र गौरवमय देश न होकर, परतन्त्र पद-दलित देश हो गया है? मां! तुम्हारा संकोच व्यर्थ नहीं है, हम सचमुच गिर गए हैं, दीन हैं, परतन्त्र हैं; पर मां! फिर भी हम तुम्हारे पुत्र हैं। हमें उन्हीं के वंशज होनेका गौरव प्राप्त है जो एक हजार वर्ष पूर्व तक रक्त देकर तुम्हारी उपासना करते थे।

आओ मां! अपने पुत्रोंके प्रेमकी अवहेलना मत करो। आओ, एक बार आकर इस उजड़े सिंहासन पर फिरसे आरूढ़ हो। तुम्हारे सिंहासनासीन होते ही तो हमारे हृदयकी सुप्त वीरता जाग उठेगी और हम एक बार फिर स्वस्थ चित्तसे तुम्हारा स्वागत करेंगे।

मां! हमारा देश चाहे जैसा हो गया हो, पर हमारा हृदय अब भी पहले जैसा ही है। उसमें तुम्हारे

दीपमालाका रहस्य

[लेखक—विद्वद्वर श्री पं० नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ]

कहते हैं वर्षभरमें दीपावलीके दिन लक्ष्मी घरमें आती है और यदि थोड़ा भी अन्धकार घरके किसी कोनेमें रह जाय तो लक्ष्मी वहींसे उलटे पांव लौट जाती है। इसीलिये दीपावलीके दिन घरके प्रत्येक भागमें दीपक जलाकर रक्खे जाते हैं। घरभर में उजाला रहा और हृदयगुहामें अन्धकार विराजमान रहा तो भी लक्ष्मी क्यों आने लगी ? प्रकाश जो है वह आनन्दका कारण है। प्रकाश सत्त्वगुणका द्योतक है। इसीलिए प्रकाशमें-आध्यात्मिक प्रकाश हो, दिनमें सूर्यका प्रकाश हो, अथवा रात्रिमें दीपक का प्रकाश हो—आनन्द मिलता है। दीपावलीके दिन घर-घर दीपमाला होती है, लोग कितने प्रसन्न रहते हैं, बालक बच्चोंका उत्साह तो पूछिये ही नहीं। कितना आमोद-प्रमोद होता है ? इसदिन घरके देवता भी प्रकाशमें रहते हैं और मनुष्य भी। और दिन तो देवता भले ही प्रकाशमें रहें किन्तु घरवाले कामके योग्य प्रकाश रखकर शेष घरमें अन्धकारसे ही काम निकाल लिया करते हैं। क्या अच्छा हो कि मनुष्य और मनुष्योंके देवता दोनों प्रकाशमें रहें।

हिन्दू जाति उत्सवप्रिय जाति है, इसके उत्सव छीनलो कि फिर इस जातिको निष्प्राण ही समझो। संसारभरमें इतने उत्सव मनानेवाली जाति और कोई है ही नहीं। उत्सव और त्यौहारोंके निमित्तसे यह जाति अपने विगत वैभवको प्रतिवर्ष स्मरण कर लेती है, पुण्यपुरुषोंकी स्मृतिसे अपने आपको पवित्र कर लेती है। जप, तप, उपवास, आनन्दोत्सवसे कुछ प्रायश्चित भी कर डालती है। इसलिए हिन्दू-जातिके त्यौहार और उत्सव बड़े कामके हैं, उनमें प्रचलित कुरीतियोंका निवारण करके मूल त्योहार और उत्सव सर्वथा रक्षा करनेके योग्य हैं। कोई ऋतुके त्योहार हैं, कोई अयनके त्योहार हैं, कोई महापुरुषोंके त्योहार, कोई एकजातीय तो कोई सर्वजातीय त्योहार हैं, कोई राष्ट्रिय हैं, कोई केवल पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं तो कोई केवल स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखने वाले त्योहार हैं, कोई बच्चोंके त्योहार, तो कोई कन्याओंके त्योहार हैं। इस प्रकार सुख दुःख मिश्रित इस संसारमार्गको सुखमय बनानेका त्योहार एक उत्तम मार्ग है। परमात्मा इस जातिके त्योहार तथा आनन्दोत्सव बनाये रक्खें।

बाह्यरूपमें जितने चाहें आनन्दोत्सव मनाये जायं। किन्तु आनन्दोत्सवोंका एकमात्र स्रोत जो प्रकाश है, वह सदैव हृदयमें विराजमान रहना चाहिये। हिन्दुजाति सतोगुण-प्रधान जाति है। किन्तु

प्रति उतना ही अनुराग, उतनी ही श्रद्धा भरी हुई है। हमारे पूर्वजोंने उन्नत मस्तक होकर घीकी दीपमालिकासे तुम्हारा स्वागत किया था, हम नतमस्तक होकर क्षुद्र तैलकी 'दीपमालिका' से तुम्हारा स्वागत करते हैं। और हमारे पास रह ही क्या गया है ? यही थोड़ेसे तैलके दीपोंकी टिमटिमाती हुई माला सजा कर तुम्हारे लिए रक्खी है। हम दीन हैं, असमर्थ हैं। इससे अधिक हमारे लिए असम्भव है। आओ मां ! इसीको अपनाकर अपने पुत्रोंको कृतार्थ करो।

इन प्रदीपोंमें भरा हुआ तैल, तैल नहीं—हमारे हृदयका रक्त है। सचमुच मां ! इसकी एक-एक बूंद के लिए हमने अपना रक्त पानी एक किया है, न जाने कितने उपवासोंका कष्ट सहन किया है। तब कहीं जाकर इस अनुदार संसारकी दृष्टिसे इतना-सा तैल बचा सके हैं। यह मूल्यहीन होते हुए भी अमूल्य है। यह सुखी समृद्ध संसारके लिए चाहे कुछ न हो पर हमारे लिए बहुत कुछ है।

मां ! इस क्षुद्र उपहारको स्वीकार करो।

इस समय इसका वह सतोगुण तमोगुण से अनुविद्ध है, इसीलिए सब कार्य करते हुये भी इस जाति को यह पता नहीं है कि वह अमुक कार्य क्यों कर रही है ? उसका भाव क्या है ? फल क्या है ? सब कुछ एक रूढ़ि (रिवाज) समझकर हो रहा है । इसीलिए उसमें प्राण नहीं है । जो ललनाएं किसी समय वैदिक साम्राज्य गीत "इन्द्रस्य तु स्वराज्यम्" गाती थीं, आज वह ललनाएं किस प्रकारके गीत गाकर उत्संगमें बैठे हुए बालकके कर्णरन्ध्रको पवित्र या अपवित्र करती रहती हैं, इस बातके लिखनेकी क्या आवश्यकता है ।

जिस जातिमें राम, बलराम, परशुराम हुए; जिस जातिमें कृष्ण भगवान् हुए, उस जातिको आज साम्राज्य और स्वातन्त्र्य (मोक्ष) अथवा स्वातन्त्र्यकी महिमा समझानेकी आवश्यकता आ पड़ी है; कितना दुःख है ? जिस जातिमें आत्माके अजरत्व अमरत्वके तत्त्वको जन्मघुट्टीके साथ पिलाया जाता रहा है वह जाति आज इतनी भीरु क्यों बनी हुई है ? वह जाति आज किंकर्त्तव्य-विमूढ़ क्यों हो रही है ? इसका कारण यही है कि इस जातिका रक्षक साम्राज्य इसके शिरपर नहीं है, इसके धर्म-कर्मकी सुध लेनेवाला, इसको यथार्थ मार्गमें प्रवृत्त करानेवाला साम्राज्य इसके शिरपर नहीं है । मनाया करो उत्सव, पीटा करो लकीर, उड़ा लिया करो एकाध दिनके लिये आमोद-प्रमोद, जोर लगाकर मनालो एक दिनके लिये दीपमाला, ऐसी दीपमाला कि जिसको लोग देखकर दंग रह जांय, होता क्या है, असली तत्त्व कहां है ? विलायती मोमबत्तियोंसे जलायी हुई दीपमाला, जिन बिजलियोंके बटन दूसरोंके हाथोंमें हैं उन बिजलियों की दीपमाला, दीनदुखियोंकी चरबी निकालकर उससे जलायी दीपमाला, दूसरोंके घरोंमें अन्धकार करके अपने घरमें की हुई दीपमाला भला लक्ष्मीको बुला सकती है ? हृदयगुफामें घनघोर अंधकार और अज्ञान पड़ा रहे और बाह्यघरमें दीपमाला प्रज्वलित होती रहे क्या इससे भी लक्ष्मी सन्तुष्ट हो सकती है ? लक्ष्मीका क्या है, वह है पगली, वह अपने वाहन उलूकराज पर बैठकर जिधर चाहे चल देती है, जहां जी लगे वहां कुछ देर रहकर फिर अन्यत्र चल देती है । असली लक्ष्मी जिसके हाथमें है उस नारायण को बिसारकर भी की हुई दीपमाला क्या सुख पहुंचा सकती है ? भूखा भारतवर्ष, रूखा भारतवर्ष, सूखा भारतवर्ष दीपमालाको मनाये भी क्या ? इसका तैल तो सब विदेशोंमें निकल जाता है; संसारभर की जातियां इसका तेल निकालनेके उपाय ढूंढनेमें ही लगी रहती हैं । हिन्दू जातिका आज उद्धार होजाय यदि वह एक इस बातको समझ ले कि संसारको शान्तिमय-धाम बनानेकी शक्ति केवल हिन्दूधर्ममें विद्यमान है और इसीलिये हिन्दुओंको बलवान बनकर जीनेकी आवश्यकता है । हिन्दु जाति निर्बल तो संसार दुःखमय, हिन्दु-जाति सबल तो संसार सुखमय । असली दीपमाला तभी मनायी जासकती है जबकि हिन्दुओंकी श्रेष्ठ सभ्यताका प्रसार संसारभरमें हो जाय और संसारके राष्ट्र ईर्ष्या द्वेषके बिना अपनी अपनी सीमामें रहकर परस्पर उपकार कर सकें—वैदिक शब्दोंमें विश्वबन्धुत्वका पुनः प्रसार हो—

देहि मे, ददामि ते । नि मे धेहि नि ते दधे ॥
नीहारं च हरासि मे । नीहारं निहराणि ते ॥ (यजुः)

आजकलके राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रोंको पदाक्रान्त करके अपनी अपनी दिवाली मनानेमें मस्त हैं– सत्य, निष्ठा और अधिकारका दुरुपयोग हो रहा है—धीरे धीरे संसार विश्वबन्धुत्व महिमाको समझेगा । एक रोवे और दूसरेकी दीपमाला जले तो क्या कहा जाय ? अब देखते हैं कि राष्ट्र हारता है और विजयी राष्ट्रके घरमें दीपमाला होती है—दीपमाला तो वही सर्व-श्रेष्ठ है जो किसी राष्ट्रको अभिभूत किये बिना, किसी राष्ट्रका अभिद्रोह किये बिना मनायी जा सके । गीता ने यही नीतिमार्ग प्रत्येक कार्यमें बतलाया है कि—

"अनभिद्रोहेण भूतानाम्"

अर्थात् वही विभूति श्रेष्ठ है जो किसीका अभिद्रोह किये बिना उपभोग की जा सके । समस्त संसार मिलकर सच्ची दीपमाला कब मना सकेगा, ईश्वर जाने, किन्तु संसारमें अपनी अपनी कल्पनानुसार समय-समय पर दीपमालाएं होती ही रहेंगी । ईश्वर भारतवासियोंको हिन्दू धर्मकी दीपमालाका सच्चा रहस्य शीघ्र समझावें जिससे यह अपने स्वरूपको समझकर पुनः गौरवशाली बन सकें ।

दीपमालिका (दिवाली) विज्ञान

[लेखक - श्री पं० केदारनाथजी शर्मा ज्योर्तिविद्]

हिन्दूधर्मके जितने भी त्योहार या उत्सव हैं, वे सब वैज्ञानिक महत्त्वों और गूढ़ रहस्यों तथा स्वास्थ्य-रक्षाके लाभोंकी प्रचुरतासे परिपूर्ण हैं । इनके अतिरिक्त उनसे आध्यात्मिक और दैवी शक्तिका भी प्रादुर्भाव होता है जिससे व्यावहारिक तथा पारमार्थिक उन्नति सरलतासे सम्पन्न हो जाती है । हिन्दूधर्मके त्योहारोंके विषयमें यह लोकोक्ति यथार्थतया प्रसिद्ध है कि "सात वार और नौ त्योहार" । हिन्दूधर्मके अनुयायी अपने समयको सुखशांति तथा आनन्दपूर्वक व्यतीत करें अर्थात् अपनी जीवनयात्रामें प्रतिष्ठा, कल्याण आदिको प्राप्त करके सद्गति प्राप्त करें ।

सब त्योहारोंमें श्रावणी (सलूनों), विजयादशमी (दशहरा), दीपमालिका (दिवाली) और होलिका (होली) ये चार मुख्य हैं । कोई त्योहार प्रातःस्मरणीय अपने पूर्वजोंकी जन्म तिथिमें हैं जैसे श्रीराम जयन्ती, श्रीकृष्ण जयन्ती इत्यादि, कोई स्मृतिमें और कोई शास्त्रीय व्यवस्थामें विद्यमान हैं ।

वर्णव्यवस्थाका महान् गौरव तथा अनुपम महत्त्व है । जिस प्रकार परमात्मा सबमें व्यापक हैं, उसी प्रकार उनकी आज्ञासे यह भी देवताओंसे लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीटतकमें विराजमान है । इसी प्रकार त्योहारोंमें भी व्याप्त है । जैसे श्रावणी ब्राह्मण, विजयादशमी क्षत्रिय, दीपमालिका वैश्य और होलिका शूद्र त्योहार है । इसका आशय यह है कि ब्राह्मणोंके लिये वेदका अध्ययनाध्यापन, यज्ञ करना कराना आदि हैं वे सब कार्य विशेषरूपसे श्रावणी त्योहारमें किये जाते हैं, अतः इस त्योहारकी ब्राह्मण संज्ञा है । विजयादशमी क्षत्रिय इसलिये है कि चातुर्मासमें वर्षा होती है जिसके कारण मार्गोंका मिलना कठिन हो जाता है, अनेक बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं; अतः यात्रा रुक जाती है । विजयादशमीसे यात्रा आरम्भ हो जाती है। प्रजाकी रक्षाके लिये विशेषरूपसे यात्रा करना क्षत्रियोंका कार्य है । वह कार्य इससे आरम्भ होता है, अतः इस त्योहारकी क्षत्रिय संज्ञा है ।

दीपमालिका (दिवाली)—वर्षाऋतुमें व्यापार शिथिल रहता है। वह शरद्ऋतुसे आरम्भ होकर उत्तरोत्तर उन्नत हो जाता है । व्यापारकी स्वामिनी श्री लक्ष्मीदेवी हैं । व्यापारकी निर्विघ्नतापूर्वक वृद्धि तथा सिद्धिके लिए इसदिन उनकी आराधना की जाती है । फिर देश विदेशोंमें व्यापार करना वैश्योंका कार्य है, अतः दीपमालिकाकी "वैश्य" संज्ञा है ।

होलिका (होली) में हास्य विविधप्रकारकी क्रीड़ा आदि की जाती है । ये क्रियाएं प्रायः शूद्रोंमें प्रचलित हैं, अतः इसकी शूद्र संज्ञा है ।

संगठन—यद्यपि इन चारोंकी संज्ञा तथा क्रियाएं विभिन्न हैं । तथापि ये एक सूत्रमें सम्बद्ध होकर संगठित हैं, और इन चारों त्योहारोंको चारों ही वर्ण बड़े प्रेम तथा उत्साहसे मनाते हैं । चारों वर्णोंका इन त्योहारोंका मनाना अलौकिक प्रेम तथा संगठन प्रकट करता है। कलियुगमें संगठनकी विशेषतया आवश्यकता है क्योंकि लिखा है कि "संघेशक्तिः कलौयुगे" अर्थात् कलियुगमें संगठन ही सबके सम्पूर्ण कार्योंका सम्पादन करनेवाला है । दिवालीमें प्रत्येक गृहस्थी अपने २ घरको लीप पोतकर स्वच्छ और सुसज्जित बनाकर दैवी-शक्ति प्राप्त करनेके लिये श्री-लक्ष्मीदेवीकी आराधना करता है, क्योंकि शास्त्रमें बतलाया है कि "न च दैवात् परं बलम्" अर्थात् दैव बलसे अधिक कोई बल नहीं है । अतएव हमारे जितने भी नित्य, नैमित्तिक, काम्य, संस्कार, उत्सव, व्रत, त्योहार आदि हैं, उन सबमें प्रथम दैवी शक्ति प्राप्त

करनेका साधन किया जाता है। वे कार्य दैवी शक्तिकी सहायतासे पूर्णतया सम्पन्न हो जाते हैं।

संसारकी शक्तियोंमें धनशक्ति भी मुख्य है, क्योंकि इसकी इच्छा राजासे लेकर रंकतक करते हैं; और न इसके बिना साम्प्रत कोई कार्य भी चल सकता है। इस शक्तिके प्राप्त करनेके लिये दैवी सहायता लेते हुए अनेक शिल्पविद्यादि साधन हैं। हमने दैवी सहायताको तथा उक्त साधनोंको भी छोड़ दिया है, जिससे परम श्रद्धेय भारतवर्ष देशका गौरव प्रतिदिन न्यून होता जारहा है। जो भारतवर्ष प्रत्येक बातमें परिपूर्ण और सबका शिरोमणि था वही आज अन्य देशोंकी तुलनाको ही नहीं किन्तु दीनताको प्राप्त हो रहा है।

भारतवर्षकी उन्नतिकी गणना तथा उसका परिमाण करना सर्वथा असम्भव है। यद्यपि आधुनिक सभ्यताने बहुतसे चमत्कारोंका आविष्कार किया है तथापि प्राचीन आविष्कारोंकी अपेक्षा अत्यन्त सुगम तथा अल्प हैं। जैसे पशु पक्षीकी बोली तथा अणिमा (जर्रेके बराबर होना) महिमा (बड़ेसे बड़ा होना) गरिमा (भारीसे भारी होना) लघिमा (हल्केसे हल्का होना) प्राप्ति (प्रत्येक वस्तुकी प्राप्ति) प्राकाम्य (इच्छाकी सफलता) ईशत्व (प्रभुता) वशित्व (वश में करना) ये अष्ट सिद्धियां, रसायन (कीमिया) कल्प (अवस्थाका बदलना) और योगाभ्यास आदि हैं। जिनके अनेक प्रमाण इतिहास पटलमें अंकित हैं। हमारा कर्तव्य है कि संगठन तथा प्रेमपूर्वक उन प्राचीन आदर्शोंका अनुसरण कर अपने देशको गौरवान्वित, उन्नत तथा सब शिरोमणि बनायें, जिससे पूर्ववत् हमारे देशमें विद्या, बल, धन, आदि शक्तियों का प्रचुरतासे विकास हो। इस उन्नतिके साधनका त्योहारोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

उन परमोज्वल त्योहारोंमें महान् गौरव तथा परम महत्त्वको धारण किये, एवं आर्थिक शक्तिका जन्मदात्री दीपमालिका (दीवाली) दीपावली हमारे समक्ष प्रस्तुत है। यह कार्तिक कृष्ण अमावास्याको बड़े आनन्दसे घर-घर मनाई जाती है।

दीपावली—कारण

(१) श्रीविष्णु-पुराणमें कथा है कि एक समय दुर्वासा ऋषि श्रीगङ्गास्नानके लिये जा रहे थे, मार्गमें देवराज इन्द्र मिले। उन्होंने ऐरावत हाथीसे उतरकर ऋषिको प्रणाम किया। ऋषिने प्रसन्न होकर आशीर्वादपूर्वक सुगन्धित पुष्पोंकी माला दी। देवराजने उस मालाको सूंघकर हाथीके मस्तक पर डाल दिया। हाथीने उसे सूंडसे तोड़-मरोड़कर पृथ्वी पर फेंक दिया। ऋषि जब स्नानकर उस मार्गसे आये तो आशीर्वादमें दी हुई मालाकी दुर्दशा देखकर उन्होंने खेद किया तथा अपना अपमान समझा और देवराजको मदान्ध जानकर शाप दिया कि तीनों लोकोंकी लक्ष्मी (रत्नरूप) समुद्रमें चली जाय जिससे उसका त्रिलोकीमें अभाव रहे। ऋषिके शापसे ऐसा ही हुआ और जगत्में अन्धकार छागया। तब देवता और दैत्योंने लक्ष्मीके अभावसे दुखी होकर पारस्परिक संगठनसे समुद्रका मथन किया, जिसमे १४ रत्न निकले। तभी संसारमें अन्धकारके बदले प्रकाश हो गया। यह दिवालीका दिन वही है और हमको स्मरण दिलाता है कि आज श्रीलक्ष्मीजीका पुनर्जन्म हुआ है। अतः उनकी आराधना, सेवा, पूजा करनी चाहिए क्योंकि सैकड़ों विघ्नोंका सामना करनेपर लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

(२) ऐसा भी सुना है कि भगवान् वामनजीने दानवेन्द्र दानी राजाबलिको इस दिन पाताल लोकका राज्य दिया है, जिसके उपलक्ष्यमें दीप प्रज्वलित किए जाते हैं।

(३) प्राचीन समयमें एक बड़ा प्रबल नरकासुर राक्षस था जिससे प्रजा और देवता अत्यन्त भयभीत तथा दुखी थे। उन सबने मिलकर संसारके पालक रक्षक श्रीविष्णुभगवान्से प्रार्थना की और उन्होंने उस दुष्ट राक्षसको मारकर सम्पूर्ण प्राणियोंको निर्भय तथा सुखी कर दिया। अतः शत्रुवधके उपलक्ष्यमें दीपावली मनायी गई। दीप तब प्रज्वलित किये जाते हैं जब कोई आनन्द या उत्सव होता है। यह

दिन हमें स्मरण दिलाता है कि प्रजाको पीड़ा देने-वाला और धर्म विध्वंसक राक्षस आज मारा गया है। इसलिये किसीको कष्ट न पहुंचाना और धर्मकी रक्षा करनी चाहिये।

(४) यह भी सुना जाता है कि इसीदिन महाराजाधिराज प्रतापशाली धर्मात्मा वीर-विक्रमादित्य राजा उज्जैनके अटल सिंहासनपर अभिषिक्त हुए थे। इस कारण दीप प्रज्वलित करनेका उत्सव किया गया; जोकि अद्यावधि हमको उनका स्मरण दिलाता है।

(५) मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्याके राज-सिंहासनपर विराजमानहोकर प्रथमावसर इस दिन बड़े समारोहसे श्रीमहालक्ष्मीजीकी आराधना की थी और फिर दिग्विजयके लिये प्रस्थान किया था। श्रीमहालक्ष्मीजीकी उपासनासे विजय-धन यश-सुख आदि ऐहलौकिक साधन तथा पारलौकिक साधन भी प्राप्त होते हैं। अतः हमको प्रातःस्मरणीय भगवान् रामचन्द्रजीका पुनीत आदर्श लेते हुए यह उत्सव भक्ति तथा श्रद्धासे मनाना चाहिये।

(६) कौरवोंने ऐरावत हाथीके बनानेके लिये मृत्तिका इकट्ठीकी थी तो पांडवोंकी माता कुन्ताने कहा कि तुम भी मृत्तिका ले आओ। यह सुन वीर शिरोमणि अर्जुनने इसी दिन श्रीमहालक्ष्मीजीकी प्रसन्नताके लिये देवराज इन्द्रके वाहन ऐरावत हाथीको स्वर्गसे बुलाकर पूजन किया था। यह ऐरावत हाथी भी समुद्रसे निकले चौदह रत्नोंमेंसे एक रत्न है, जिसके पूजनेसे पांडवोंको राज्य, लक्ष्मी तथा विजय प्राप्त हुई। अब भी कहीं २ सोने चांदीके ऐरावत हाथीका पूजन होता है।

इत्यादि, अनेक कारणोंसे दीपावली उत्सव प्रसिद्ध और प्रचलित है। किन्तु इन सब कारणों तथा शास्त्रीय व्यवस्थाका रहस्य यही है कि यह श्रीमहालक्ष्मी जीके जन्म-प्रकट होनेसे उपासनाका मुख्य दिन है।

द्यूत (जूआ)

कलिकालके प्रभावसे आज-कल मनुष्य दिवालीपर द्यूतक्रीड़ा (जूआ) खेलनेको ही लक्ष्मी प्राप्तिका कारण मान, जुआ खेल-खेल कर अपना धन नष्ट कर देते हैं। शास्त्रमें जुआ खेलना निषिद्ध है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि महाभारतके अन्दर राजा परीक्षित के शासन-समयमें गौका रूप धरकर पृथ्वी, और बैलका रूप धरकर धर्म भागे जा रहे थे। उनके पीछे काले रूप वाला मनुष्य मूसल हाथमें लिये दौड़ा जा रहा था। राजाने बुलाकर पूछा, "तू कौन है?" उसने कहा "मैं कलियुग हूं, मुझे रहनेको स्थान बताओ।" तब उन्होंने कहा कि, "वेश्या, मदकी हाट, चोरी, हिंसा और जुए आदिमें रहो।" तबसे वह इनमें ही रहने लगा। महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा है कि हे राजन्! यदि मैं द्वारकापुरीमें होता तो जुएका समाचार सुनकर बिना बुलाये चला आता और जुएके दोष दिखलाकर उसे रोक देता और जो मेरा कथन न मानते तो उनको बलपूर्वक निग्रह (गिरफ्तार) कर लेता। महाभारत वन पर्व अध्याय १३ श्लोक ७-८-९

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानमेतत् कामसमुत्थितम्।
दुःखचतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः॥ १॥
तत्र सर्वत्र वक्तव्यं मन्यन्ते शास्त्रकोविदाः।
विशेषतश्च वक्तव्यं द्यूते पश्यन्ति तद्विदः॥ २॥
एकाहाद्द्रव्यनाशोऽत्र ध्रुवं व्यसनमेव च।
अभुक्तनाशश्चार्थानां वाक्पारुष्यं च केवलम्॥ ३॥

स्त्री (परस्त्री) संसर्ग-जुआ-मद्यपान और शिकार खेलना ये चारों कामसे उत्पन्न होते हैं। इनसे मनुष्यकी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। विद्वान् ज्ञानियों की राय है कि ये चारों ही बातें बुरी हैं, किन्तु इन चारोंमें जुआ तो बहुत ही बुरा है। जुआ खेलनेसे उपार्जित धन एक ही दिनमें बिना भोगे नष्ट हो जाता है। जुआ खेलनेसे लक्ष्मी प्राप्तिका शकुन समझना बड़ी भारी अज्ञानता है, क्योंकि इससे तो प्रत्यक्षमें ही लक्ष्मी नष्ट होती है। थोड़ा ध्यान देने की बात है कि जिस जुएमें कलियुगका वास है, उससे हमको

फिर लक्ष्मी की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इस एकमें ही सभी दुराचरण भरे हुए हैं, इसके हमको बड़े बड़े उदाहरण मिलते हैं।

(१) चक्रवर्ती महाराजा नल जुआ खेलनेसे राजपाट हारे और अपनी स्त्री दमयन्तीको वनमें अकेली छोड़कर स्वयं रथ हांकनेकी नौकरी की और अनेक आपत्तियां उठाईं।

(२) महाराजा धर्मराज युधिष्ठिरने जुआ खेला जिसके कारण आप वन-वनमें भूखे प्यासे फिरे और महाभारत हुआ जिसमें बड़े बड़े रथी (एक हजारसे लड़ने वाला), महारथी (दस हजारसे लड़ने वाला) और वीरोंका स्वाहा हो गया; जिससे आज हिन्दू जातिकी ऐसी हीन दशा हो रही है।

अतएव हमको शिक्षा लेनी चाहिये कि जब ऐसे बड़े-बड़े चक्रवर्ती पुरुषोंपर अनेक विपत्तियां जुआ खेलनेसे पड़ीं, तब हम इसके खेलनेसे कैसे उन्नति प्राप्त कर सकते हैं ? कदापि नहीं। अतः इसका बहिष्कार करना चाहिये। किन्तु रात्रिभर श्रीलक्ष्मीजी की आराधना, पूजा, पाठ आदि कार्य होने चाहियें। अर्थात् गोपालसहस्रनामादि स्तोत्ररूपी पाशोंसे दारिद्रय तथा दुर्भाग्यरूपी जुएको जीतकर स्वयं लक्ष्मी प्राप्त करनी चाहिये।

लीपने पोतनेका कारण

दिवालीके अवसरपर प्रत्येक गृहस्थीके यहां गोबर से लीपा और पिंडोल मिट्टी या चूनेसे पोता जाता है।

ज्ञान--भूगर्भ शास्त्रके वेत्ताओंने निश्चय किया है कि पृथ्वीके २२ मील नीचे इतनी उष्णता है कि वहां पत्थर भी डाला जाय तो पिघल जाता है। उस उष्णताके कारण ही कुओंका पानी गरम निकलता है, इधर घरोंमें अन्नादिक का व्यवहार होता ही है। अतः अन्नादिकके पड़ने और नीचेकी उष्णता (गर्मी) से कीटाणु (जर्म्स) पैदा हो जाते हैं और चौमासेमें सूर्यका प्रकाश वर्षाके कारण बहुत कम पड़ता है। अतः वे कीटाणु (जर्म्स) वायु द्वारा उड़ २ कर घरकी दीवारोंपर छेदोंमें जम जाते हैं। अमेरिकाके बड़े भारी वैज्ञानिक डाक्टर आब्रहम लिंकन साहिबने अपने वैज्ञानिक अनुभव द्वारा यह सिद्ध किया है कि जो दूषित कीटाणु (जर्म्स) बुहारी लगाने और जलसे धोने आदि उपचारोंसे दूर नहीं होते वे गायके गोबर और पीली मिट्टीसे अतिशीघ्र नष्ट हो जाते हैं। भैंसका गोबर छिपकली पैदा करता है, इसलिये कीटाणुओंके नष्ट करनेके लिये प्रथम गोबर मिट्टीसे लीपते हैं, फिर पिंडोल मिट्टी या चूनेसे पोतते हैं, यह जर्म्स (कीड़ों) को नष्ट कर देता है। पुनः जो कुछ शेष रहें वे दीवोंके प्रकाशसे नष्ट हो जाते हैं। दीवालीसे ही प्रायः मनुष्य घरके अन्दर सोना आरम्भ करते हैं, जिससे फिर कीटाणु सम्बन्धी किसी रोगके होनेकी सम्भावना नहीं रहती है. यही लीपने पोतने और दीवे जलानेका रहस्य है।

कन्दील विज्ञान

घरके विषैले कीटाणु (जर्म्स) तो गोबरके लीपने पोतने आदिसे नष्ट हो जाते हैं, किन्तु घरके ऊपरी भागमें जो विषैले कीटाणु रहते हैं, वे सब कन्दीलमें दीपकके प्रकाशसे नष्ट हो जाते हैं। इसको शास्त्रमें "आकाशदीपक" के नामसे लिखा है। इन्हें दशहरेसे आरम्भ कर कार्तिक मास पर्यन्त जलाना चाहिए।

खीलोंका विज्ञान

दीपावली (दिवाली) के उत्सवमें खीलोंका उपयोग किया जाता है। जिसका तात्पर्य यह है कि हिन्दू जातिके जितने भी त्योहार हैं, वे सब मङ्गलमय और शुभेच्छासे मनाये जाते हैं और उनमें माङ्गलिक पदार्थोंका उपयोग किया जाता है। उनमें लाजा (धानकी खीलें) माङ्गलिक पदार्थ हैं। नगर निवासी प्राचीन समयमें अपने अपने राजाओंके ऊपर खीलों की वृष्टि किया करते थे। अब भी यह प्रथा कहीं २ किसी किसी कार्यमें प्रचलित है। विवाह संस्कारमें कन्या खीलोंका वेद मन्त्रों द्वारा हवन करती है, जिन मन्त्रोंका आशय यह है कि इन खीलोंके हवनसे मुझे

कभी पति-वियोग न हो, मेरे पतिकी दीर्घ-आयु हो, मेरे कुटुम्बियोंकी वृद्धि हो, और मेरा पति सब प्रकार से सम्पन्न हो। तात्पर्य यह है कि खीलोंमें अपूर्व शक्ति है। वह शरीरके दूषित परमाणुओंको दूर कर मस्तिष्क शक्तिको स्वच्छ और बलिष्ठ बनाती हैं, इसलिए इनका उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद-शास्त्रमें खीलोंके अनेक गुण बतलाकर उनका उपयोग करना लिखा है, जो विस्तार भयसे यहां नहीं लिखा जाता है।

खांडके खिलौने

दिवालीके अवसर पर जो खांडके खिलौने बनते हैं, यह उस समयकी प्रथा मालूम होती है कि जिस समय भारतवर्षमें हिंसाकी प्रबलतासे पशुओंका वध अधिक होता था। बुद्धभगवान्का अवतार हुआ और उनके द्वारा पशुवधका पूरे तौर पर निराकरण हुआ, जैसा कि गीतगोविन्दमें "निन्दसि यज्ञ विधे" लिखा है। इसी प्रयत्नमें सम्भवतः पशुवधके स्थानमें खांडके पशु बनाकर वध करनेकी प्रथा चली, किन्तु आज-कल जो पशुओंकी आकृतिके खिलौने बनाए जाते हैं उनका बहिष्कार करना चाहिए, नहीं तो बच्चोंके हृदयोंमें उन खिलौनोंसे हिंसा करनेके बीजका अंकुर जम जाता है। इसका संशोधन हलवाइयों तथा विचारशील सज्जन पुरुषोंके हाथमें है कि वे पशुओंके सांचे परिवर्तन कराकर वृक्ष, पुष्प और फलोंके सांचे कर दें तो यह कुरीति दूर हो जाय। खांडके खिलौने और खीलोंके उपयोग करनेका आशय यह है कि वर्षाऋतु में पित्त सञ्चय होता है और शरदृऋतुमें कुपित होता है, दीपावली शरदृऋतुमें होती है, अतः उक्त दोनों वस्तुएँ पित्तको शान्त करती हैं।

संक्षिप्त—पूजनविधि

पहले अपने आप स्नानादिसे निवृत्त होकर निम्न यन्त्रको चांदी या तांबे या भोजपत्र पर शुद्ध केशर, छोटी इलायची मिले चन्दनसे अनारकी कलमसे लिखें।

यन्त्र—

१	१४	४	१५
८	११	५	१०
१३	२	१६	३
१२	७	९	६

फिर हाथमें सुगन्धियुक्त फूल लेकर (श्रीमहालक्ष्म्यै नमः) ध्यानावाहनं समर्पयामि पढ़कर यन्त्र पर चढ़ा देवे। फिर आचमनीसे जल लेकर (श्रीमहालक्ष्म्यै नमः) अर्घ्यं समर्पयामि १, पाद्यं समर्पयामि २। आचमनं समर्पयामि ३। स्नानं समर्पयामि ४। पढ़कर किसी पात्रमें दिखा दिखा कर कुल ७ बार जल छोड़े। इसके बाद इस यन्त्र पर चन्दन चढ़ावे। चावल-फूल दूबके नाल, धूप-नैवेद्य ताम्बूल-सुपारी ऋतुफल आदि से पूजन करे। घीका दीपक सबसे प्रथम जलाकर रक्खे। (श्रीमहालक्ष्म्यै नमः) इस मन्त्रसे कपूरसे आरती करे और पुष्प चढ़ावे। फिर परिक्रमा करे, दण्डवत् प्रणाम करे। फिर आसन पर बैठकर भक्तिपूर्वक एकाग्र चित्तसे श्रीसूक्त, गोपालसहस्रनाम, लक्ष्मी स्तोत्रादिका पाठ करे। यदि इनका पाठ न कर सके तो नीचे लिखे महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रका यथावकाश यथाशक्ति पाठ करे।

स्तोत्र—

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥१॥
नमस्ते गरुड़ारूढे कोलासुर—भयङ्करि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥२॥
सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्ट—भयङ्करि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥३॥

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ।
मन्त्रमूर्ते सदादेवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।४।।
आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ।
योगजे योगसंभूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।५।।
स्थूल-सूक्ष्म-महारौद्रे महाशक्ति महोदरे ।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।६।।
पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्म-स्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।७।।
श्वेताम्बरधरे देवि नानाऽलङ्कार भूषिते ।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।८।।

प्रार्थना

हमारे सभी त्योहार और उत्सव प्राकृतिक रूपसे (कुदरती तौर पर) वात-पित्त-कफ आदि दोष जनित रोगोंकी चिकित्सारूपमें विद्यमान हैं। यदि हम इनके अनुसार व्यवहार करेंगे तो निस्सन्देह शान्त-निरोग-सन्तुष्ट-ऐश्वर्ययुक्त अध्यात्मिक बलसम्पन्न होंगे।

जो सज्जन उपर्युक्त प्रकार द्वारा श्रीमहालक्ष्मीजी का पूजन श्रद्धाभक्तिके साथ करेंगे वे अवश्य ही श्रीलक्ष्मीजीके कृपापात्र होंगे, और मैं भी अपनेको कृतकृत्य समझूंगा।

ज्यौतिष पर कुछ विचार

[लेखक—श्री पं० परमानन्दजी विद्यालङ्कार]

एक प्रसिद्ध दार्शनिक सूत्र है 'स पूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्' इसका अर्थ यह है कि वह परमात्मा कालकी काल्पनिक सीमाओंसे बंधा हुआ न होनेसे सर्गारम्भसे सबका ज्ञान देने वाला परमगुरु है। हमारे सांसारिक गुरु कितने भी योग्य क्यों न हों, वह देशकालसे परिछिन्न हैं। परन्तु गुरु परम्परा के मूलकी ओर आते हुए हम अन्ततोगत्वा उसे ही गुरुओंका भी गुरु-ज्ञानदाता और स्तुत्यदेव पाते हैं।

एक छोटेसे तीन-चार व्यक्तियोंके परिवारमें, सौ-पचास पुरुषोंके ग्राममें, सहस्रोंकी जनसंख्या वाले नगरमें, और लाखों मनुष्योंके निवास-स्थान देशमें भी सर्वत्र रहने वालोंके सुखके लिए और व्यवस्थाको सुचारुरूपसे चलानेके लिए कोई न कोई नियम और उनको चलाने वाला, उनके अनुसार शासन करने वाला नियामक अवश्य होता है। उसे हम राजा, प्रेसिडेण्ट, व्यवस्थापक अथवा अन्य कोई भी नाम दे सकते हैं। फलतः नियम और नियामकके बिना शान्ति स्थापन असम्भवसा है। तो इस अनन्त प्राणि पूर्ण, असंख्य ग्रहोपग्रह व्याप्त, बड़ेसे बड़े ज्ञानियोंके लिए अज्ञेय महाब्रह्माण्डकी शान्त और व्यवस्थित प्रगतिको देखकर किसी अमितज्ञानवान् नियन्ताकी सत्ता न मानना दुराग्रह मात्र होगा। अपने अत्यन्त सूक्ष्मावधानसे सम्पादित कृत्योंमें प्रतिदिन अगणित त्रुटियें पाते हुए इस विशाल रचनामें रत्तीभर भी नियन्त्रण भङ्ग, अथवा एक पलका भी विलम्ब कहीं प्रयत्नशतेनापि नहि नहिं ढूंढ सकते। इतने वर्षों और इतनी शताब्दियोंसे संसरण करते हुए इस संसारमें किसी ज्योतिर्विद्ने एक निमेषकी भी कभी भूल निकाली है? यदि नहीं, तो हमें मानना होगा कि इस दृश्यमान जगत्का स्वामी असीमज्ञान और शक्तिका भण्डार है।

अब प्रश्न यह होता है कि वह ज्ञानका अगाध कोश हमें ज्ञान किस प्रकार देता है, क्योंकि केवल ज्ञानका सागर होनेसे कोई गुरु नहीं कहा जासकता-गुरु तो वही है जो अपने ज्ञानसे शिष्योंको लाभ पहुंचाये। उस नियामक राजा—परमात्माका प्रत्यक्ष मुख तो है नहीं जो हमें वाणी द्वारा उपदेश दे, तो हम सामान्य लोक उसके ज्ञानके भागी किस विधिसे हो

सकते हैं ? इसका उत्तर भगवती श्रुति स्पष्ट शब्दों में देती है—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत" ।

उसका मुख ब्राह्मण है, ब्राह्मण कौन है ? स्मृतिकार बताते हैं— "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" । ब्रह्मज्ञ सदाचारी विद्वान् और आप्तजन जो उपदेश हमें देते हैं वही यथार्थ ज्ञान है। उन विद्वानों ने ज्ञान कैसे पाया ? यदि उन्हें जन्मसे ही ज्ञानी उत्पन्न किया गया तो हमें ऐसा क्यों न बनाया ? इससे तो वह जनपिता अन्यायी और पक्षपाती ठहरता है। इसलिए ऋषिलोक कहते हैं कि उसका ज्ञान-ग्रन्थ यह असीम ब्रह्माण्ड सबके सामने खुला पड़ा है। उसे पढ़नेका किसीके लिये निषेध नहीं है जो चाहे और जिसकी आंखें हों वह इसे आकर पढ़ें ।

इस ब्रह्माण्डके सनातन ग्रन्थमें 'कार्यकारणभाव' का अविचल, अव्यभिचारी नियम सर्वत्र देखनेमें आता है । कारणसे ही कार्योत्पत्ति होगी, उसके बिना कभी नहीं । प्रत्येक कार्य किसी न किसी कारणसे ही सम्भूत होगा उसके अभावमें नहीं । इस कार्यकारण-श्रृंखला और नियमको जो जितनी गहराई तक समझ लेगा उसे हम उतने अंशतक ज्ञानवान् कहेंगे । प्रकृति-ग्रन्थकी प्रत्येक घटना यथा वर्षाका होना, रातदिनका आना, शरद्-ग्रीष्मका पुनरावर्तन सभी वस्तुएं उसी कार्यकारणके शाश्वत नियमके अन्दर बंधी हुई हैं। गर्मी पड़नेसे समुद्र जल वाष्प होकर आकाशमें जाता है और वायुमण्डलके शीतसे घनीभूत हुआ हुआ वर्षाके नदी, नालों और स्रोतोंसे बहता हुआ पुनः समुद्रमें जा पहुंचता है । इसीप्रकार अन्य प्रकृति के परिवर्तनोंको, नक्षत्रों तकको गतिविधिको, लोक-परलोकोंके कार्यकलापको कार्यकारण भावके अदृश्य परन्तु व्यक्त नेत्रोंसे जो गम्भीरतासे देख लेता है वही 'ब्रह्माण्ड-ग्रन्थको' पढ़ता है । वह अपने ज्ञानचक्षुओं से भूत, भविष्यद्, वर्तमान तीनों कालोंको देखता है—अतएव उस द्रष्टाको 'ऋषि' कहा जाता है—'ऋषिर्दर्शनात्' ।

एक छोटा बालक जो सांपके दशनधर्मको और अग्निके दाहक स्वभावको न जानता हुआ उनके मुखमें हाथ डालनेको उद्यत होता है उसे हम परिणामको जानने वाले-कार्याभिज्ञ माता पिता ऐसा करनेसे रोकते हैं । उस बालककी अपेक्षा हम ज्ञानी हैं । क्यों ? इस कारणसे होने वाले कार्यको हम जानते हैं । हम भविष्यवेत्ता इतने अंशमें हो गये कि हमने कह दिया कि 'आगमें हाथ डालोगे तो जल जायगा' और 'सर्प मुखमें अंगुली जायगी तो काटली जायगी' । इस प्रकार प्रभुके ग्रन्थ 'संसार' का गम्भीरतासे अध्ययन करते हुए अपने ज्ञानको भिन्न भिन्न विषयोंमें विकसित करके सृष्टिनियमको समझकर हम अपनी भविष्यदृष्टिको बहुत बढ़ा सकते हैं, इसमें कोई सन्देहका अवसर नहीं है ।

सृष्टिरचना और प्रकृतिनियमकी गहराईमें उतरनेवाले दर्शनकार महर्षियोंने अपने तर्कनेत्रोंसे और बुद्धि-वैशद्यसे प्रत्यक्ष करके हमें बताया है कि नियममय इस जगत्में कोई शब्द, कोई क्रिया, किसी प्रकार की भी गति अपने कार्यको उत्पन्न किए विना नहीं रहती। हमारे हृदयमें उदित होता हुआ किसी भी मनुष्यको प्रतीत न होनेवाला छोटेसे छोटा विचार तक वायुमण्डलमें सूक्ष्म विचार लहरियोंको उत्तरोत्तर जन्म देता हुआ व्यर्थ नहीं जाता। उसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है। जब यह सिद्धान्त मान लिया गया तभी हम एक अबोध और सांसारिक मलिनतासे मुक्त बालकके हृदर्पण पर दिखाई देती हुई 'आज मेरा पिता आयगा' की भविष्यवाणीकी सत्यताका उत्तर दे सकते हैं। और कारण बता सकते हैं । पिताके हृदय द्वारा विस्तारित (ब्रौडकास्ट) की गई घर पहुंचनेकी अव्यक्त और अति सूक्ष्म विचारधारायें बालकके शुद्धहृदय रूपी रेडियो पर स्पष्ट सुनाई देती हैं । यहां यह प्रश्न होता है कि हम उस विचार परम्पराको क्यों न जान सके ? विस्तारित ध्वनि तो सबको सुनाई देनी चाहिए ? क्यों बालक उस ध्वनिको सुन लेता है और किस कारण हम उससे वञ्चित रह जाते हैं ? इसका उत्तर यही है कि

हमारा मनका रेडियो संसारके अनेक पापोंकी धूलसे भरा पड़ा है, इस लिए वह अपना कार्य पूर्ण रूपसे नहीं करता। जिन योगियों और महात्माओंने उसे शुद्ध बना लिया है वह वायु-मण्डलमें व्याप्त उन लहरोंको सुन सकते हैं—शब्दको रिसीव कर सकते हैं। बिगड़ी हुई मशीन शुद्ध यन्त्र जैसा कार्य नहीं दिया करती, अतः जिस मनोयन्त्रसे भविष्य दर्शनका उपयोग लेना है उसे ज्ञान और सदाचारसे शुद्ध दशामें रखना होगा।

हम निवेदन कर चुके हैं कि इस नियममें बंधे हुए जगत्‌की छोटीसे छोटी क्रिया भी अकस्मात् अथवा अनियमसे नहीं होती तो ऐसी दशामें हमारी इस पृथिवीसे हजारों, लाखों और करोड़ों गुणा विशाल परिमाण वाले ग्रहों और उपग्रहोंकी गति और स्थिति जैसी महती क्रियाका कोई परिणाम न हो, इस कारणसे कोई कार्य न हो अथवा इतनी महत्त्वपूर्ण घटनाका कुछ परिणाम न हो—इसको बुद्धि नहीं मानती, तर्क स्वीकार नहीं करता। नाना ग्रहों तथा उपग्रहोंका किसी विशेष स्थितिमें आजाना कुछ भी प्रभाव न रक्खे यह कहना आत्मवञ्चना और दुराग्रह सा प्रतीत होता है। इतना ही नहीं—जबकि हम देखते हैं कि नक्षत्रविद्याके अभ्यासी और तत्त्-नक्षत्रकी गतिविधिको निरन्तर देखनेवाले और इस अंशमें भविष्यदर्शी ज्योतिर्विशारद जो परिणाम हमें प्रथमतः बताते हैं वह यथार्थ सिद्ध होता है तब तो इस विद्याको केवल कल्पना कहना दम्भके सिवाय क्या माना जाय ? मनुष्योंकी अल्पज्ञतासे वस्तुस्थिति समझनेमें सामयिक भूलें हो जाने मात्रसे विद्याको अयथार्थ कह देना उचित नहीं। वास्तवमें अधूरा अभ्यास करके अपनेको पण्डित माननेवाले ही श्रद्धालुओं और विश्वासिओंके हृदयोंमें भी कभी-कभी अश्रद्धा और अविश्वासका सञ्चार कर देते हैं।

हम तो विज्ञ पाठकोंके समक्ष यह थोड़ेसे विचार रखकर इस विषयमें विद्वानोंको अपना सोपपत्तिक निर्णय देनेकी प्रार्थना करते हैं और इस विद्याकी सत्यता प्रमाणित हो तो देशकी एक प्राचीन विद्याके पुनरुद्धारसे धनिकों और पण्डितोंको पुण्यभागी बनना चाहिए। आजकल जो लोग इस शास्त्रकी अभिज्ञताका गर्व करते हैं उनका ग्रन्थाभ्यास और ज्ञान प्रायः इतना नहीं देखनेमें आता जिससे शास्त्र-गौरवमें वृद्धि हो। इसी उद्देश्यसे विद्वन्मण्डलीका ध्यान इसके उत्थानकी ओर खींचनेका यह प्रयास किया है।

छुट्टियां हाईकोर्ट पंजाब और युक्तप्रान्त

दीपमाला ता० ८ नवम्बर रविवार

भैय्यादूज टिका २ ता० १० नवम्बर मंगलवार

देवोत्थान ता० १८ नवम्बर बुधवार

टुकरी पूर्णमासी— ता० २२ नवम्बर रविवार

ईद उल्जुहा (बकरीद)—ता० १६ दिसम्बर शनिवार

बड़ा दिन (क्रिसमिस)— ता० २४ से ३१ दिसम्बर गुरु से गुरुवार तक।

न्यू ईयर्स डे— ता० १ जनवरी शुक्रवार

लोहड़ी— ता० १३ जनवरी बुधवार

मकर संक्रान्ति— ता० १४ जनवरी गुरुवार

भारतीय ज्यौतिषप्रणाली

[लेखक—ज्योतिर्विद्यारत्न श्री पं० कृष्णचन्द्रजी शर्मा ओझा केतकी पञ्चाङ्गकर्ता]

[श्री ओझाजी ज्योतिषशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित और अनुभवी विद्वान् हैं, "भारतीय ज्यौतिष प्रणाली" के सम्बन्धमें आपके लेख 'श्रीस्वाध्याय' में प्रकाशित होते रहेंगे । आशा है पाठकगण इस प्रकारके लेखोंका विचारपूर्वक मनन करेंगे। —सम्पादक]

भारतीय जनताका धर्मशास्त्रीय निर्णय प्राचीन परम्परासे ज्योतिशास्त्र पर ही निर्भर है। जैसे तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, इन पांच अङ्गोंके साथ जो भी प्रचलित पञ्चाङ्ग अपनी अपनी गणितसे करके पञ्चाङ्गकर्त्ता जनताकी सेवामें रखते हैं वह पञ्चाङ्ग और ग्रहगणित जैसे ग्रहचार ग्रहण उदयास्त आदि इन विषयों पर धर्मशास्त्रोंका आधार माना जाता है। इस लिए श्रीस्वाध्यायमें हमने "भारतीय ज्यौतिष प्रणाली" के नामसे लेखमाला आरम्भ की है, अतः विद्वान बन्धु "हंसक्षीर" न्यायके अनुसार इसको पढ़नेकी कृपा करेंगे ऐसी आशा रखकर इस लेखमाला को प्रारम्भ कर रहा हूं।

ज्योतिश्शास्त्रकी प्राचीन परम्परा किस पद्धति की है? इस पर पहले विचार करना चाहिए। ज्योतिश्शास्त्रका उद्गम "वेदाङ्ग ज्योतिष" से माना जा रहा है। ज्योतिश्शास्त्रके तीन अङ्ग प्रचलित हैं ही—

सिद्धान्त संहिता होरा रूपस्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलंचक्षुः ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम् ॥१॥

इस प्रकार सिद्धान्त, संहिता, होरा, ऐसे तीन स्कन्धोंमें ज्योतिश्शास्त्र व्याप्त है। सिद्धान्तमें खगोलिक गणितशास्त्र, और संहिता अर्थात् वेधविज्ञान, तारागणों के मानको यन्त्रों द्वारा जानना, आजकल "संहिता" शब्द मुहूर्त्त और शकुन आदिका ही द्योतक होगया है और होरा फलितशास्त्रको कहा गया है। इस लेखमालामें क्रमसे विचार किया जायगा। पहले "सिद्धान्त" विषय पर विचार करता हूं।

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ ॥

अन्य शास्त्रोंमें जो कि अप्रत्यक्ष शास्त्र हैं उनमें केवल मात्र विवाद हुआ करते हैं, किन्तु इस ज्योतिश्शास्त्रमें वैसी स्थिति नहीं है। इस शास्त्रमें चन्द्र सूर्य यह साक्षी दिया करते हैं। जैसे रवि-चन्द्रादि योग उदयास्त शृङ्गोन्नति आदि प्रत्यक्षता दिखाते हैं इसी लिए यह शास्त्र प्रत्यक्षशास्त्र कहा गया है। शिक्षामें कहा है कि—

"ज्यौतिषामयनं चक्षु निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते"

ज्यौतिश्शास्त्र नेत्ररूप हैं, इससे स्पष्ट होता है कि ज्योतिश्शास्त्र को वेदका नेत्र कहा है इसीसे नेत्रोंसे देखी जाने वाली स्थितिको प्रत्यक्षशास्त्र कहा है और "चक्षुर्हिवै सत्यं" नेत्रोंसे देखी स्थिति ही सत्य है। क्योंकि ग्रहगणित उदयास्त शृङ्गोन्नति आदि प्रत्यक्ष वेधोंमे (दृष्टिसे) देखे जाते हैं। इसीलिए यह वचन अपने शास्त्रोंमें हैं। और भी प्रमाण हैं कि—

"चिकित्सितंज्यौतिषमन्त्रवादा पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति"

इसमें आयुर्वेद, ज्योतिष, और मन्त्रशास्त्र इन तीनोंकी पद पद पर प्रत्यक्षता दिखाई देती है। इसी लिए वेदका यह अङ्ग नेत्र माना गया है, ऐसे अनेक प्रमाण हैं। विवाह, यज्ञोपवीत, मुहूर्त्त, जातक, ताजिक, व्रत, उपवास आदिका निर्णय ज्योतिश्शास्त्रसे ही किया जाता है। वेदकालमें भी प्रत्यक्ष वेधोंसे ग्रहस्थितिको देखकर कालगणना किया करते थे और उसके अनुसार यज्ञ, याग, व्रत, उपवास आदि किया करते थे। इससे वेदमें कालज्ञानको मुख्य माना है—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥

कालज्ञान ही श्रेष्ठ माना गया है और कालज्ञान के ही आधीन यज्ञ, व्रतादि धर्मशास्त्र और जातकादि ज्यौतिश्शास्त्र हैं। इसी लिए कालज्ञान ज्यौतिश्शास्त्रसे जानकर उसका योग्य समय जानकर उस समय में व्रतादि धर्मकार्य करने चाहिये। कालज्ञान पद्धतिका उद्गम इस आर्यभूमिमें प्राचीन कालसे लेकर आज तक चला आ रहा है। जैसे युग, वर्ष, ऋतु,मास, दक्षिणायन, उत्तरायण, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, ग्रहभ्रमण आदि कालमापन पद्धति प्रचलित है जिसमें ६ प्रकार पाये जाते हैं—

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा ।
सौरं च सावनं चान्द्रदमार्क्षमानानिवै नव ॥ सू० सि०

उक्त नव मानोंमें प्रचलित १-सौर, २-चान्द्र, ३-नाक्षत्र और ४-सावन, यह चार मानोंसे ही कालमापन किया जाता है और इन्हीं मानोंसे काल गणना कर आधुनिक पञ्चाङ्ग निर्माण किये जाते हैं। इस लिए इन्हीं चार मानों पर विचार करना योग्य होगा।

१—सौर

मेषसे आदि लेकर १२ राशियों पर भ्रमण कर सूर्यके पुनः उसी स्थान पर आनेके समय तक जो कालावधि लगे उसको सौर मान कहते हैं। यह काल प्राचीनमत से ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल और ३० विपल, तथा आधुनिक वेधतुल्य ३६५ दिन १५ घटी २२ पल और ५७ विपल इतने समयमें सूर्य १ भचक्रका फेरा करता है (वर्षमानके विषयमें सविस्तर आगे विचार किया जायगा)।

२—चान्द्र

शुक्ल प्रतिपदासे लेकर अमावस्या तक १ मास ऐसे १२ मास याने ३५४ दिनसे होने वाला १ वर्ष इसमें अधिक मास प्राप्त होने पर १३ मास अर्थात् ३८४ दिनका एक वर्ष होता है।

३—नाक्षत्र

द्वादश नाक्षत्र माससे एक नाक्षत्रवर्ष हुआ करता है, इसमें वर्षमें ३२४ दिन होते हैं, अन्य मतोंसे ३२७ दिन भी माने गये हैं।

४—सावन

इसमें ३६० दिनका एक वर्ष होता है।

इसी प्रकार इनकी मासकी भी कल्पना की हुई है। किन्तु प्रचलित पञ्चाङ्गोंमें चान्द्र और सौर मास ही दिए होते हैं। चान्द्रमासके दो प्रकार हैं—एक शुक्ल प्रतिपदासे अमावास्या तक और एक कृष्ण प्रतिपदासे शुक्ल पूर्णिमा तक, ऐसे चान्द्रमासके दो प्रकार हैं। कृष्ण प्रतिपदासे पूर्णिमा तकके मासको कई लोग सौरमास कहते हैं किन्तु वह योग्य नहीं है।

चान्द्रोऽपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादिर्वेति च द्विधा ।
दर्शान्तो वैदिको मासो राकान्तः स्मार्त उच्यते ॥ नि०सिं०

निर्णयसिन्धुकारने चान्द्रमासके दो प्रकार बतला कर शुक्लादिमासको वैदिक मास और कृष्णादिमास को स्मार्त्तमास कहा है। और भी इसमें कई मतभेद पाये जाते हैं, किन्तु नर्मदाके उत्तर भागमें (उत्तर हिन्दुस्थानमें) कृष्णादि मासकी प्रथा है, परन्तु उनको भी अधिक मास माननेके लिये शुक्लादिमासको ही मानना पड़ता है, गुर्जर महाराष्ट्र दक्षिणदेशमें शुक्लादि माससे सर्व धार्मिक क्रियाएं हुआ करती हैं।

कृष्णपक्षादिकं मासं नाङ्गीकुर्वंति केचन ।
येऽपीच्छन्ति न तेषामपीष्टो विन्ध्यस्य दक्षिणे ॥

कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ किया हुआ मास अर्थात् स्मार्त्तमास कुछ पण्डित लोग अंगीगार नहीं करते हैं, और जो करते हैं उनका यह भी कहना है कि विंध्याद्रिके दक्षिण भागमें उसको मानना नहीं चाहिये। भारतमें प्रचलित शुक्लादि और कृष्णादि ऐसे दो मास ही प्रचारमें हैं। किसी-किसी पञ्चाङ्गमें सौर मास (संक्रातिसे) के इन्हीं मासोंमें नाम निर्देश कर दिया करते हैं, चैत्रादि मासोंकी कल्पना

वेदोंमें स्वल्प पाई जाती है। परन्तु चैत्रादि मासोंकी व्यवस्था नक्षत्रोंसे हुई ऐसा सूर्यसिद्धांतमें लिखा है—

यस्मिन् मासे पौर्णमासी येन धिष्ण्येन संयुता।
तन्नक्षत्राऽह्वयो मासः पौर्णमासी तदाऽह्वया॥
नक्षत्र नाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः॥ सू० सि०

जिस पूर्णिमाको जो नक्षत्र हो वही नाम उस मासका दिया गया है। जैसे— १ चित्रा, २ विशाखा, ३ ज्येष्ठा, ४ पूषा, ५ श्रवण, ६ पूर्वा भाद्रपदा, ७ अश्विनी, ८ कृत्तिका, ९ मृग; १० पुष्य, ११ मघा, १२ पूर्वाफाल्गुनी। ऐसे द्वादश नक्षत्रोंसे चैत्रादि नाम प्राप्त हुए हैं। चैत्रपूर्णिमाको चित्रा, वैशाखमें विशाखा, ज्येष्ठमें ज्येष्ठा आदि पूर्णिमाको नक्षत्र होते हैं, और उसमें विशेषता यहहै कि उस २ पूर्णिमाको वह नक्षत्र सायंकालमें चंद्रके साथ उदय हुआ दिखाई देता है, इसी कारण चांद्रमासोंको नक्षत्रोंके नाम दिये हुए दिखाई देते हैं। किसी २ पूर्णिमाको दोनक्षत्र होते हैं—

कार्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।
अंत्योपांत्यो पंचमश्च त्रिधामासत्रयं स्मृतम्॥ सू० सि०

कार्तिकादि ४ मासोंमें क्रमसे पूर्णिमाको नक्षत्र आते हैं। कृत्तिका, रोहिणी (कार्तिक), मृग, आर्द्रा (मार्गशीर्ष), पुनर्वसु, पुष्य (पोष); आश्लेषा, मघा (माघ); ऐसे नक्षत्र आते हैं। कार्तिकसे पांचवां मास फाल्गुन, इस मासकी पूर्णिमाको पूर्वा, उत्तरा हस्त, (फाल्गुन); चित्रा, स्वाति (चैत्र); विशाखा, अनुराधा, (वैशाख); ज्येष्ठा, मूल, (ज्येष्ठ); पू० षा०, उ० षा० (आषाढ़); श्रवण, धनिष्ठा (श्रावण) कार्तिकसे उपान्त्य याने भाद्रपद; इसमासकी पूर्णिमाको शततारका, पू० भा०, उ० भा०, (भाद्रपद) ऐसे ही कार्तिकसे अंत्य याने आश्विन इसमें रेवती, अश्विनी, भरणी, (आश्विन) इस प्रकार नक्षत्रों परसे मास की उत्पत्ति हुई है। इसमें पहले कहे हुए एक-एक नक्षत्रोंसे मासोंके नाम रक्खे गये हैं, किन्तु कभी २ एक नक्षत्र आगे पीछे भी हो जाता है। फिर भी सायंकालको पूर्व क्षितिज पर चन्द्रके सन्निकट वह नक्षत्र उदय हुआ दिखाई देता है।

यहां तक मानोंमें किसीमें मतभेद नहीं है। यद्यपि भारत अनेक शास्त्रीय विषयोंमें प्रवीण है, तथापि यहां दुराग्रह हठ स्वाभिमान कहीं २ विस्तृत रूपमें पाया जाता है; इसीसे इस भारतमें आज प्रचलित अनेक मत-मतान्तर दृष्टिमें आ रहे हैं। किन्तु हम पहले ही कह आए हैं कि ज्यौतिषशास्त्रमें वाद-विवादको कथमपि स्थान नहीं है। यह एक प्रत्यक्ष शास्त्र है इस शास्त्रमें सत्यताकी साक्षी रविचन्द्रादिग्रह और भपञ्जर अहर्निश दिया करते हैं, वहां मत-मतान्तर होना यह एक अपनी दुर्बलताका कारण है।

प्रचलित पंचांग तीन पद्धतिके निकला करते हैं। जैसे १ ग्रहलाघव वा सूर्यसिद्धान्तपक्ष, २ केतकी (नूतन ग्रहलाघव) पक्ष और तीसरा ३ रैवतपक्ष अर्थात् तिलक पञ्चाङ्ग पक्ष (इस पञ्चाङ्गका उत्तर भारतमें प्रचार बिल्कुल नहीं है) वेदकालके समय प्रत्येक ज्यौतिषी प्रत्यक्ष आकाशीय स्थितिको देख कर धर्म-शास्त्रका निर्णय करते थे, किन्तु धीरे-धीरे प्रत्यक्षवेध लेनेकी क्रियायें लुप्त प्राय होते देख प्राचीन परम्परा को स्थिर रखते हुए सिद्धांतकारोंने सिद्धांतोंकी रचना की। जिसमें अनेक समयमें अनेक सिद्धांत रचे गये। सिद्धांतोंकी गणित जटिल होनेसे और स्थूल प्राय होने पर करण ग्रंथोंकी रचना हुई। आजकल करण-ग्रंथोंकी गणित स्थूल होनेसे कुछ समयसे इस भारत-वर्षमें पञ्चाङ्ग-शोधन पर पर्याप्त हलचल हो रही है और पञ्चाङ्ग-शुद्धि करनेकी आवश्यकता पूर्ण रूपमें मानी जा रही है। पहले प्रथम पक्षका (ग्रहलाघव वा सिद्धांत) विचार करना योग्य होगा। सिद्धांतोंकी गणित जटिल और स्थूल होनेसे भारतीय विद्वानोंने करण ग्रंथोंकी रचना की— जिसमें प्रचलित ग्रहलाघव करणग्रंथकार गणेश दैवज्ञका पिता केशव दैवज्ञ हुआ, जिसने अपने पासके ग्रंथों द्वारा वेधोंसे परि-माणोंको जान कर और प्राचीन गणित स्थूल होगई ऐसा देख कर उसने करण ग्रंथ बनाया। इस ग्रंथमें भी थोड़े ही समयमें ग्रंथकारके पुत्रने अन्तर देख कर (गणेश दैवज्ञने) ग्रहलाघव ग्रंथकी रचनाकी और सब समस्या उसमें पूर्णरूपसे लिखी गई हैं। आगेका विषय यहां लिखनेका यह कारण है कि गणेश दैवज्ञ तक आकाशीय परिमाणोंको वेधोंसे जान कर ज्योतिशास्त्र निश्चित किया जाता था और उसीसे भारतीय जनता धर्म शास्त्रीय व्रत उपवास आदि पालन किया करते थे।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः

दैवज्ञकी दृष्टिमें संसारचक्र

[लेखक—श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय']

श्रीमद्भगवद्गीतामें महर्षि व्यासजीने लिखा है कि भगवान्के विराट रूपको देख कर अर्जुन घबरा गया था। इस घबराहटका कारण क्या था ? इसके सम्बन्धमें एक महात्माजीने इसका रहस्य हमें यों कहा था कि — अर्जुनने देखा कि भगवान्के मुखमें सहस्रों और लाखों प्राणी जा रहे हैं, उन्हींमें अर्जुनके बन्धुबान्धव भी दिखाई दे रहे हैं, इसी कारण अर्जुन बहुत घबरा गया था। अपनी आंखोंसे अपने सम्बन्धियोंका विनाश देख कर कौन नहीं घबराता ? भगवान्ने वस्तुतः इस घबराहटको दूर करनेके लिए ही "कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः" इत्यादि कहा था। भगवान्ने केवल वस्तुस्थितिका निर्देशमात्र किया है। तात्पर्य यह है कि जब तक किसी भी वस्तुकी वास्तविक परिस्थिति न जान ली जाय तब तक स्थिति नहीं हो सकती। अर्जुनने वास्तविक परिस्थिति अभी तक जानी ही नहीं थी। भगवान् कहते हैं कि—सम्पूर्ण लोगोंका क्षय (विनाश) तो स्वाभाविक ही है। क्या अर्जुन ! तू भूल गया ? मैंने तो तुमसे कहा था—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत !॥

जबकि दिखाई देने वाला यह व्यक्त-विश्व सर्वदा अविनाशी अप्रमेयका शरीर मात्र है तथा इसी लिए यह टिकाऊ नहीं, इसका तो विनाश अवश्यम्भावी है, तब फिर हे भारत ! तुम युद्धके लिए क्यों सङ्कोच करते हो ? जो कुछ होना है वह तो समस्त संसारका मूल महाकालके ही आधीन है। जब ऐसी परिस्थिति है तब इसमें शोककी बात ही क्या। फिर—

"यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ ! लभन्ते युद्धमीदृशम्॥

भगवान् कह रहे हैं कि अनायास प्राप्त हुआ खुला हुआ स्वर्गका द्वार ऐसा युद्ध प्राप्त करके क्षत्रिय लोग तो अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ करते हैं। फिर अर्जुन तुम सुखी होनेके स्थानमें अज्ञानसे जो दुखी हो रहे हो यह ठीक नहीं, अस्तु।

महात्माजीके इस गीताके स्वारस्यको सुनकर हमारा चित्त भी निश्चिन्त-सा हो गया है। 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठकोंने गताङ्कोंमें जो कुछ बातें पढ़ी हैं वे प्रायः अधिकांश में ठीक ही मिली हैं। इसी कारण इस नववर्षके नवीन अङ्कमें लोगोंके आग्रहसे थोड़े बहुत विचार हम प्रकट कर रहे हैं। इसको हमारे प्रेमी पाठक सावधान चित्तसे पढ़कर लाभ उठाएंगे तो हमें भी सन्तोष होगा।

जबकि प्राणिमात्रने किसी न किसी समय कालके गालमें जाना ही है क्योंकि गीताके शब्दोंमें यह विश्वका स्वभाव ही है, तो केवल वृथा शोक करने या भयभीत होनेसे क्या लाभ ? नीतिशास्त्रज्ञोंका तो कहना है कि—

तावदेव हि भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।

किन्तु इसका तात्पर्य सर्वदा सीधा ही लेना चाहिए। दृष्टिकोणको निर्मल रखनेसे ही कल्याण हो सकता है। प्रत्येक प्राणिमात्र स्वातन्त्र्यके बिना सुख प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु अव्यवस्थित आचारका नाम स्वतन्त्रता नहीं है। स्वतन्त्रता तो वही है जिससे प्राणिमात्र का हित हो। हित वास्तविक परिस्थितिको समझकर उसके अनुकूल बाह्य व्यवस्था करनेसे ही हो सकता है। इसी लिए अन्तःशुद्ध-सरल-सत्य-

शिव सुन्दरताके आधार पर जो भी व्यवस्था की जाती है वही संसारकी हितकारक हो सकती है, इससे विरुद्ध प्रकारकी नहीं।

अनिष्ट योगोंका संसार पर प्रभाव

ज्योतिश्शास्त्रके आधार पर नभोमण्डलके ग्रहचार उनके योग प्रतियोग आदि देखकर हमें जो कुछ भासित हो रहा है उसीको हम यहां पाठकोंको समर्पण कर रहे हैं। इसके साथ ही साथ संसारके विशिष्ट-विशिष्ट प्रधान पुरुषोंके सिद्धान्तोंको तथा उनके ऊपर पड़ने वाले ग्रहोंके परिणामोंको भी दृष्टि से ओझल न करना होगा।

प्रथम वर्षके 'ग्रीष्माङ्क' में हम लिख चुके हैं कि तीन अमावास्याओं को क्रमशः पांच-पांचग्रह एकत्रित हो रहे हैं, यह एक महान् अनिष्टकर योग है। इन तीन मासोंमें कार्तिक कृष्णा अमावास्या तथा मार्गशीर्ष कृष्णा अमावास्या इन दोनों पर्वों पर यह कुयोग आ रहा है। कार्तिक कृष्णा अमावास्याको पञ्चग्रह योगके अतिरिक्त एक और भी कुयोग बन रहा है, वह यह है कि—दीपावली पर्व पर सायङ्काल लक्ष्मी पूजनके समय स्वातिनक्षत्र का अभाव और क्रूरवार भी है। यह तीनों अशुभ योग किसी महान् अनिष्टको सूचित करते हैं। पञ्चग्रह योगके सम्बन्धमें किसी प्राचीन अनुभवी विद्वान्ने यों लिखा है—

एकराशौ यदा यान्ति चत्वारः पंच खेचराः।
प्लावयन्ति महीं सर्वां रुधिरेण जलेन वा॥

[एक राशिमें चार पांच ग्रहोंका इकट्ठा होना पृथ्वी पर रुधिरसे (युद्धादि उपद्रवोंसे) अथवा जलसे महान् उत्पात करता है] पाश्चात्त्य मतानुसार भारतकी राशि मकर है इससे दशम स्थानमें पञ्चग्रह योग हो रहा है। इससे तो यही ज्ञात होता है कि भारतमें आने वाले विशेष सङ्कटकी यह पूर्व सूचना है। इस समय भारतीय नेताओंको विशेष बुद्धिमत्तासे काम लेना चाहिए। आपत्ति दूर होनेके भी कुछ सुयोग हैं; कारण इसी मतानुसार भारतकी राशिसे राशिपतिका पंचम होना तथा पंचमेशका दशमेश होकर दशममें होना, एवं सप्तम स्थानमें उच्चस्थ बृहस्पतिका होना स्पष्ट बतलाता है कि नीतिमत्तासे काम लेने पर इस आपत्तिसे भारतको विशेष हानि नहीं होगी। प्राच्य मतानुसार भी भारतके लिए शत्रुनाश योग प्रबल है।

इसीप्रकार मार्गशीर्षकृष्ण अमावास्याको भी पांच ग्रह वृश्चिकराशिमें एकत्र हो रहे हैं, किन्तु भारतके लिये यह मास आपत्तिकारक होनेपर भी विशेष हानि नहीं होगी। इसके अतिरिक्त एक साथ ही कार्तिक मार्गशीर्ष इन दो मासोंमें पांच-पांच क्रूरवार आरहे हैं यह भी महान् अनिष्ट योग ही है। इन योगोंसे तो यही प्रतीत हो रहा है कि वैदेशिक नीति को घोर आपत्तिका साम्मुख्य करना पड़ेगा। राष्ट्रके या शासनयन्त्रके कई अवयव ढीले पड़ जाएंगे तथा टूट फूट जानेकी भी बहुत सम्भावना है। इसमें बहुत सतर्क रहनेकी आवश्यकता है, तथा भगवान पर भरोसा रखकर उसके बताये हुए लोक-कल्याणकारक सनातन नियमों पर चलना ही अधिक श्रेयस्कर होगा।

यातायातकी समस्या इन मासोंमें अत्यन्त विषम हो जावेगी। इन तीन मासोंमें घृत धान्यादिके भाव तेज होंगे। सम्भव है सोना भी अधिक तेजी पर जायेगा। हाथियोंके रोग अधिक बढ़ेंगे। त्रिदोषज्वर अधिक फैलेंगे। जल, अग्नि, चोर, शीत, शस्त्रादिके भय अधिक उत्पन्न होंगे। स्त्रियां, लेखक, शिल्पी, कलाकार चित्रकार इन लोगोंकी परिस्थिति ठीक नहीं रहेगी। मगधदेश, श्रावकलोग, चार पुरुष (गुप्तचर) दूत, सारथी लोग, कथावाचक, पोत (जलयान) नट आदि पर दुष्ट प्रभाव होगा। इसके अतिरिक्त त्रिगर्त्त (कांगड़ा प्रांत) चीन, कुलूत (कुल्लू) काश्मीर आदि देशोंके लोगोंको सन्ताप होगा। सिन्धु, सौवीर, भारतीय समुद्रतटवर्ती प्रान्त–महाराष्ट्र सिंहलद्वीप कच्छ आदि प्रान्तोंमें ज्वरादि रोग विशेष होंगे। अनार्य लोगोंको पीड़ा अधिक होगी। राजाओंमें परस्पर कुछ मैत्री भी होगी। शीत अधिक पड़ेगी। तंगण लोग, पर्वतीय लोग और मन्त्रीमण्डलके लोगोंको कष्ट होगा। राजा, राजपुरोहित तथा सैनिकलोगोंको पीड़ा अधिक होगी। कर्नाटक, गौड़देश (गया और बंगालके बीचका प्रांत) देवगिरि (महाराष्ट्रका कुछ प्रांत) मलयपर्वत (मैसूरका कुछ प्रांत) और

मालवप्रान्तमें भी उपद्रव होंगे। वैद्य तथा सांसारिक लोगोंको कष्ट होगा। भांति-भांतिके रोगोंके उपद्रव प्रायः सभी जगह होगा। मूलवस्तुओं (कच्चा माल) के व्यापारी लोगों तथा वैद्य डाक्टरादि चिकित्सा करनेवाले लोगोंको भी कष्ट रहेगा। जलचर प्राणियों को पीड़ा अधिक होगी। प्रायः सभी धान्य मंहगे होंगे। बड़े-बड़े राजाओंमें आन्तरिक वैरभाव बढ़ेगा। छोटे राजवर्गोंमें मैत्री होनेकी अधिक सम्भावना है।

पौषमासमें मङ्गल-शनिका प्रतियोग भी हो रहा है। इसका परिणाम भयानक ही है। राजकीय परिस्थितिमें भयानक रूपसे उलटफेर होंगे। बीमा कम्पनियों पर इस योगका अनिष्ट प्रभाव पड़ेगा। कई समाचार-पत्रों पर आपत्तियां आवेंगी जिससे कई पत्रोंका प्रकाशन स्थगित हो जावेगा। आर्थिक स्थिति में भयानक उलटफेर होंगे। जहां तहां पैसोंकी न्यूनता बहुत खटकेगी, रुपयों या नोटोंकी भान (रेजगारी) मिलना कठिन हो जावेगी। व्यापारियोंको सावधान रहना चाहिये। चोर डाकू ठग लुटेरे लोगोंका आतङ्क बढ़ेगा।

वर्तमान महायुद्ध

कार्तिकमासके ग्रहयोग रूसके लिए महान् अनिष्टकर हैं। सन्धि हो अथवा न हो कार्तिकके अनन्तर रूसका युद्ध शिथिल पड़ जायगा, सन्धिकी भी सम्भावना है। इन्हीं दिनों अफ्रिकामें घोर युद्ध आरम्भ होनेकी भी सम्भावना है। सुदूर पूर्वके राष्ट्रों को मार्गशीर्ष मासके ग्रहयोग विशेष अनुकूल हैं। सम्भव है कि भारतके प्राग्दक्षिण देशोंमें युद्धसम्बन्धी उलटफेर हों। अमेरिकाके कुछ उपद्वीपों पर जापान का सफल अधिकार होनेकी सम्भावना है। अफगानिस्थान और भारतमें परस्पर मैत्रीकी सम्भावना है। भारतके लिए परिणाममें अनिष्ट ग्रह नहीं; प्रत्युत भारत तथा भारतीय महापुरुषोंकी जन्मकुण्डलियों पर वर्तमान ग्रह स्थितिका सम्यक्तया विचार करनेसे ज्ञात होता है कि कितनी ही असह्य आपत्तियां सहने पर भी अन्तिम परिणाम भारतके लिए सुखकर सिद्ध होगा। इंग्लेण्ड, सीरिया, लीव्हरपूल, वाशिंगटन, मद्रास, सूरत, बड़ौदा, म्हैसूर, उड़ीसा, बिहार बंगाल और बम्बई प्रान्तके लिए ये तीन मास अधिक अनिष्टकर रहेंगे। चीन, तिब्बत, ब्रह्मदेश, उत्तरइजिप्ट, आस्ट्रिया, पुर्तगाल, गलेशिया, पंजाब और युक्तप्रान्तके लिए ये मास साधारण अनिष्टप्रद रहेंगे।

पंचग्रह योगका प्रभाव

कार्तिक कृष्ण अमावास्याका पञ्चग्रही योग कर्क, तुला, वृश्चिक, मीन राशिको अनिष्ट है। पाश्चात्य मतानुसार उक्त राशियोंका प्रभाव स्काटलेण्ड, हालेण्ड अफ्रिका (पश्चिम व उत्तर भाग) आस्ट्रिया, चीन, जापान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, उत्तरइजिप्ट, न्यूयार्क, मान्चेस्टर, जिनेवा, स्टकहोम, बव्हेरिया, नार्वे, ट्रान्सवाल, लीव्हरपूल, वाशिंगटन, पुर्तगाल और गलेशिया तथा भारतमें कलकत्ता, बम्बई, उड़ीसा, सूरत पर विशेष रूपसे होगा।

मार्ग कृ० ३० का पञ्चग्रही योग मेष, सिंह, वृश्चिक, धनुः राशिको अनिष्ट है। इन राशियोंका प्रभाव इंगलेण्ड, डेन्मार्क, लेसर, पोलेण्ड, जर्मनी, पेलेस्टाईन, सीरिया, जापान, फ्रान्स, इटली, खाल्डिया से बसरा पर्यन्त, रोम, शिकागो, बव्हेरिया, नार्वे, ट्रान्सवाल, लीव्हरपूल, वाशिंगटन, अरब, आस्ट्रेलिया हंगरी, स्पेन और भारतमें महाराष्ट्र, काठियावाड़, मद्रास, सूरत, बड़ौदा, म्हैसूर, उड़ीसा, बम्बई, कोल्हापुर पर विशेष रूपसे होगा।

इनमें से जिन-जिन देशोंके प्रधान पुरुषोंकी जन्मराशि जन्मलग्नसे अशुभ स्थानमें यह योग होगा उन-उन देशोंमें बहुत विनाश होगा और जिन देशोंके प्रधान पुरुषकी राशिसे शुभ स्थानमें योग होगा उन उन देशोंमें अनिष्टफल थोड़ा होगा।

इसके अतिरिक्त अन्य विशेष फल वही होगा जो हम 'श्रीस्वाध्याय' के गताङ्कोंमें लिख चुके हैं। हमारा भविष्यफल कहां तक यथार्थ मिलता जा रहा है यह जाननेके लिए नए ग्राहकोंको प्रथमवर्षकी फाइल अवश्य देखनी चाहिए। ६५ प्रतिशत बातें हमारी ठीक मिली हैं; यह हम नहीं अपितु 'श्रीस्वाध्याय' के विज्ञ पाठक कह रहे हैं। इसी कारण अब प्रथम वर्षकी प्रतियां बहुत थोड़ी शेष रह गई हैं और मांग अधिक आरही है, एतदर्थ अब प्रथम वर्षकी फाइल (चारों अङ्कों) का मूल्य ३) तीन रुपये कर दिया गया है।

रोहिणीशकट-भेद

[लेखक— श्री प्रो० विद्यासागरजी जिन्दल B. A.]

[लेखकको ज्योतिर्विज्ञानसे विशेष प्रेम है। आप यूरोप जाकर वहांके कई ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओंसे भी मिल चुके हैं। रोहिणीशकट-भेदके सम्बन्धमें आपने जो विचार प्रकट किए हैं उनका हम स्वागत करते हैं। हमें यह आग्रह नहीं है कि इस वर्ष पूर्ण शकटभेद योग था, अपितु हम भी यही मान रहे हैं कि इस वर्ष आषाढ़ मासमें शनिने पूर्णरूपेण रोहिणी-शकटका भेदन तो नहीं किया है। रोहिणीनक्षत्र और शनिके शरमें कुछ कलाओंका अन्तर था, जैसा कि हम 'वसन्तांक' में लिख भी चुके हैं। यद्यपि पूर्णरूपेण शकटभेद नहीं हुआ तथापि रोहिणीशकटके आसन्न होकर शनिके निकलनेका जो घोर अनिष्ट परिणाम वर्तमान संसारमें दिखाई देरहा है उससे सब लोग भलीभांति परिचित ही हैं और 'श्रीस्वाध्याय' के भविष्य-फलकी सत्यताका प्रमाण स्वयं उसके विज्ञ पाठक हैं। हम चाहते हैं कि श्री जिन्दलजीकी भांति ज्योतिर्विज्ञानसे प्रेम रखनेवाले अन्यान्य विद्वान् महानुभाव भी अपने अपने मौलिक विचार 'श्रीस्वाध्याय' में भेजनेकी कृपा करें तो अधिक उत्तम हो। —सम्पादक]

सर्व प्रथम यह जानना आवश्यक है कि रोहिणी शकट क्या है? अश्विन्यादि नक्षत्रोंमें चौथा नक्षत्र रोहिणी है, इसके मुख्य तारे पांच हैं। यह सब क्रान्तिवृत्तके दक्षिणमें स्थित हैं, यदि इनको रेखा (लाईन) खींचकर मिला दिया जावे तो इनकी शकटाकृति होती है।

इसका ध्रुव वृषराशिके १७ अंश है और इन शकटाकार ताराओंमें क्रान्तिवृत्तके आसन्न ताराका दक्षिण शर दो अंशके तुल्य है। इसलिए जिस ग्रहका वृषभके १७ अंश पर दक्षिण शर दो अंशसे अधिक होगा वह ग्रह रोहिणी-शकटमें होनेके कारण इसको भेदन करेगा।

सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है—

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽंशकद्वयात्।
विक्षेपोऽभ्यधिको भिन्द्याद्रोहिण्या शकटं तु सः॥

ग्रहलाघवमें भी वृषभके १७ अंश ही कहा है। परन्तु दक्षिण शर ५० अंगुल लिखा है। ५० अंगुल १५० कला या २°-३०′ के बराबर होते हैं।

ग्रहलाघवे—

गविनगकुलवे खगेऽस्य चेद्यमदिगिषुः खशरांगुलाधिकः।
कभशकटमसौ भिनत्त्यसृक् शनिरुडुपो यदि चेज्जनक्षयः॥

सर्वानन्दलाघवे—

निरयणसदलाश्वसागरांशो यमदिशि खाक्षकुपुष्टबाणखेटः।
कभशकटभिदस्ति शंकरर्क्षात् दशसु च भेषु तमे शशाङ्कः॥

सर्वानन्दलाघव भी १५० कला दक्षिण शर होना बताता है; चाहे उसमें वृषभके १७॥ अंश क्यों न हों। शनि, भौम और चन्द्रमा यदि इस शकटको भेदन करें तो समस्त संसार ही नाशको प्राप्त होता है, यह संहिता ग्रन्थोंमें लिखा है। इसके प्रमाण श्रीस्वाध्यायके ग्रीष्माङ्कमें आचुके हैं।

अब हमें यह देखना है कि इस समय किससे शकटभेदन हो सकता है। शनि और भौम इस समय शकटभेद नहीं कर सकते, क्योंकि इनके पात इस समय ऐसे नहीं हैं जिससे इनके रोहिणीमें रहते हुए दक्षिण शर दो अंशसे अधिक या १५० कला हो जावे। इनके पातोंकी अत्यन्ताल्प गति होनेके कारण यह दोनों तो शकटभेद युगान्तरमें करेंगे।

चन्द्रमा राहुके पुनर्वसुसे आठ नक्षत्रोंमें होनेसे सदा रोहिणी शकटभेदन करता है, यह सर्वानन्द लाघवसे सिद्ध होता है। उसमें केवल पुनर्वसुसे दश नक्षत्र कहे हैं, यह अन्तर है। श्रीकेतकरजी भी यही कहते हैं कि—

स शकटं च भिनत्ति विधुः सदाऽदितिभतोऽष्टपुभेषु तमे स्थिते।

ग्रहलाघवमें भी लिखा है—

स्वर्भानावदितिभतोऽष्टऋक्षसंस्थे
शीतांशुः कभशकटं सदा भिनत्ति।
भौमार्क्यौः शकटभिदा युगान्तरे स्यात्
सेदानीं न हि भवति दृशि स्वपाते॥

इसका कारण यह है कि राहु चन्द्रमाका पात है और इसके (राहुके) इन नक्षत्रोंमें होनेसे उसका दक्षिण शर होगा और वह दो अंशसे अधिक या १५० कला हो जावेगा।

इससे यह स्पष्ट होगया कि रोहिणीभेदके लिए ग्रहका वृषराशिके १७ अंश और उसका दक्षिण शर २° या २½° (१५० कला) होना आवश्यक है। श्रीकेतकरजी वृषभके १३°-३०' कहते हैं यथा—

सदलरामयुगांशमिते ग्रहे यदि खतिथ्यधिको यमदिक्शरः।
स शकटं च भिनत्ति विधुः सदाऽदितिभतोऽष्टपुभेषु तमेस्थिते॥

उनका वृषभके १३॥ अंश कहना अन्य ग्रन्थोंसे एक वाक्यता न होनेके कारण युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता।

ग्रहयोग-प्रतियोग और केंद्रादि दृष्टियां

अक्टूबर मासमें

ता० २३ गु० श० त्रिकोण
२४ मं० शु० युतिः
२४ गु० शु० केन्द्र
२५ मं० गु० केन्द्र
२६ सू० रा० तृतीयैकादश
२७ चं० श० युतिः
२७ चं० ह० युतिः
३१ चं० गु० युतिः

नवम्बर मासमें

ता० ४ बु० गु० केन्द्र
४ मं० रा० तृतीयैका०
५ च० ने० युतिः
७ चं० बु० युतिः
७ बु० रा० तृतीयै०
८ चं० मं० युतिः
८ चं० शु० युतिः
११ मं० बु० ,,
१६ सू० शु० ,,
१८ गु० शु० त्रिकोण
१८ सू० गु० त्रिकोण
२१ शु० रा० केन्द्र
२२ बु० गु० ,,
,, सू० रा० ,,
२३ चं० ह० युतिः
,, चं० श० ,,
२४ शु० ह० प्रतियोगः
२४ सू० ने० तृतीयैका०
२५ बु० रा० केन्द्र
२५ सू० ह० प्रतियोग
२७ बु० ने० तृतीयैका०
,, बु० ह० प्रतियोग
,, चं० गु० युतिः

दिसम्बर मासमें

ता० १ सू० बु० युतिः
१ बु० श० प्रतियोग
१ सू० श० प्रतियोग
३ चं० ने० युतिः
६ चं० मं० युतिः
७ मं० गु० त्रिकोण
८ चं० बु० युतिः
८ चं० शु० ,,
११ ह० ने० त्रिकोण
१२ मं० रा० केन्द्र
१२ बु० शु० युतिः
१३ बु० रा० त्रिकोण
१३ शु० रा० त्रिकोण
१६ मं० ने० केन्द्र
१७ शु० ने० ,,
१८ मं० ह० प्रतियोग
१८ मं० ने० तृतीयैका०
१९ सू० रा० त्रिकोण
२० चं० ह० युतिः
,, चं० श० युतिः
२४ सू० ने० केन्द्र
,, चं० गु० युतिः
२६ मं० श० प्रतियोगः
२७ चं० रा० युतिः
२९ बु० गु० प्रतियोगः
३० चं० ने० युतिः

जनवरी मासमें

ता० ४ चं० मं० युतिः
७ चं० बु० ,,
,, चं० शु० ,,
११ सू० गु० प्रतियोग

—सम्पादक

त्रैमासिक पर्व व्रतादि निर्णय

[लेखकः—श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी, सम्पादक "श्रीस्वाध्याय"]

आश्विन	शुक्ल	११ मंगलवार	ता० २०	अक्टूबर	पापांकुशा ११ व्रत
,,	,,	१२ बुधवार	ता० २१	,,	प्रदोषव्रत
,,	,,	१४ शुक्रवार	ता० २३	,,	शरद् १५ सत्यव्रत, कोजागर व्रत, रासमहोत्सव ।
,,	,,	१५ शनिवार	ता० २४	,,	आकाशदीपदान, कार्तिक स्नानारम्भ ।
कार्तिक	कृष्ण	३ मंगलवार	ता० २७	,,	श्रीगणेश ४, करक (करवा) चौथ व्रत । चन्द्रोदयः प्रचलित स्टेण्डर्डटाईम १०।२७ रात्रिमें ।
,,	,,	८ रविवार	ता० १	नवम्बर	अहोई ८, अशोकाष्टमी, रविपुष्ययोग ।
,,	,,	११ बुधवार	ता० ४	,,	रमा ११ व्रत
,,	,,	१२ गुरुवार	ता० ५	,,	गोवत्साद्वादशी
,,	,,	१३ शुक्रवार	ता० ६	,,	प्रदोषव्रत, धन१३, धन्वन्तरी जयन्ती
,,	,,	१४ शनिवार	ता० ७	,,	श्रीहनुमज्जयन्ती, नरक चतुर्दशी ।
,,	,,	३० रविवार	ता० ८	,,	दीपमालिका श्रीमहालक्ष्मी पूजन
कार्तिक	शुक्ल	१ सोमवार	ता० ९	,,	अन्नकूट, गोवर्द्धन पूजन, वष्टिकाकर्षण (रस्साकशी)
,,	,,	२ मंगलवार	ता० १०	,,	यमद्वितीया, भ्रातृटिका २, चन्द्रदर्शन, लेखनी पूजन
,,	,,	५ शुक्रवार	ता० १३	,,	सौभाग्यपञ्चमी
,,	,,	८ रविवार	ता० १५	,,	गोपाष्टमी
,,	,,	९ सोमवार	ता० १६	,,	वृश्चिक संक्रान्ति, मु० १५ पुण्यकाल १।५६ उप० अक्षया ९, परिक्रमा ९ ।
,,	,,	११ बुधवार	ता० १८	,,	हरिप्रबोधिनी ११ व्रत, चातुर्मास्य व्रत समाप्ति, तुलसी विवाह, भीष्मपञ्चकारम्भ ।
,,	,,	१३ शुक्रवार	ता० २०	,,	प्रदोषव्रत
,,	,,	१४ शनिवार	ता० २१	,,	वैकुण्ठ चतुर्दशी
,,	,,	१५ रविवार	ता० २२	,,	टुकरी १५, सत्यव्रत, भीष्मपञ्चकसमाप्ति, निम्बार्क-जयन्ती, कार्तिकस्नान समाप्ति ।
मार्गशीर्ष	कृष्ण	१ सोमवार	ता० २३	,,	मृगछौड़ी १
,,	,,	४ गुरुवार	ता० २६	,,	श्रीगणेश ४ व्रत
,,	,,	७ सोमवार	ता० ३०	,,	श्रीमहाकालभैरवजयन्ती
,,	,,	११ शुक्रवार	ता० ४	दिसम्बर	उत्पन्ना ११ व्रत
,,	,,	१२ शनिवार	ता० ५	,,	शनिप्रदोषव्रत, मल्लद्वादशी
मार्गशीर्ष	शुक्ल	२ बुधवार	ता० ९	,,	चन्द्रदर्शन
,,	,,	५ शनिवार	ता० १२	,,	श्रीबलदेवजयन्ती
,,	,,	६ रविवार	ता० १३	,,	चम्पा षष्ठी
,,	,,	८ मंगलवार	ता० १५	,,	धनुः संक्रान्ति मु० ४५ पुण्यं पर दिने

मार्गशीर्ष	शुक्ल	११ शुक्रवार	ता० १८	दिसम्बर	मोक्षदा ११ व्रत, गीताजयन्ती
,,	,,	१२ शनिवार	ता० १९	,,	शनिप्रदोषव्रत, बकरीद
,,	,,	१४ सोमवार	ता० २१	,,	मतान्तरेण, गीताजयन्ती, पिशाचमोचनश्राद्ध ।
,,	,,	१५ मंगलवार	ता० २२	,,	सत्यव्रत, श्रीदत्तजयन्ती ।
पौष	कृष्ण	४ शनिवार	ता० २६	,,	श्रीगणेश ४ व्रत
,,	,,	१० शुक्रवार	ता० १	जनवरी	सन् १९४३ ई० प्रारम्भ
,,	,,	११ शनिवार	ता० २	,,	सफला ११ व्रत
,,	,,	१३ सोमवार	ता० ४	,,	सोमप्रदोषव्रत
पौष	शुक्ल	१ गुरुवार	ता० ७	,,	चन्द्रदर्शन
,,	,,	२ शुक्रवार	ता० ८	,,	हिजरी सन् १३६२ प्रारम्भ
,,	,,	८ बुधवार	ता० १३	,,	लोहड़ी (पञ्जापदेशे प्रसिद्धा), महाभद्राष्टमी
,,	,,	९ गुरुवार	ता० १४	,,	मकर संक्रान्ति मु० ३० पुण्यकाल प्रचलित स्टेण्डर्ड टाइम घं० ११ मि० १९ उपरान्त ।

महापुरुषोंकी जयन्तियां, निर्वाणदिन और प्रसिद्ध मेले

आश्विन	शुक्ल	१० सोमवार	ता० १९	अक्टूबर	द्वैताचार्य श्रीमध्वाचार्य जयन्ती
,,	,,	१३ गुरुवार	ता० २२	,,	स्वर्गीय श्रीविट्ठलभाई पटेल निर्वाणदिन
कार्तिक	कृष्ण	१० मंगलवार	ता० ३	नवम्बर	श्रीकृष्णसखा पार्थ (अर्जुन) जन्मदिन
,,	,,	३० रविवार	ता० ८	,,	दीपमाला मेला अमृतसर
कार्तिक	शुक्ल	१ सोमवार	ता० ९	,,	श्रीस्वामी रामतीर्थ जयन्ती
,,	,,	१० मंगलवार	ता० १७	,,	स्व० श्री ला० लाजपतराय पुण्यदिन
,,	,,	१२ गुरुवार	ता० १९	,,	श्री स्व० चित्तरञ्जनदास जन्मदिन
,,	,,	१५ रविवार	ता० २२	,,	मेला पुष्करराज और ऋणमोचन कपालमोचन तीर्थ श्री गुरु नानकदेव जयन्ती।
मार्गशीर्ष	कृष्ण	७ सोमवार	ता० ३०	,,	श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जन्मदिन
,,	,,	११ शुक्रवार	ता० ४	दिसम्बर	श्रीज्ञानेश्वर महाराज पुण्यदिन
,,	,,	१४ सोमवार	ता० ७	,,	मेला पुरमण्डल देविकास्नान ।
,,	शुक्ल	३ गुरुवार	ता० १०	दिसम्बर	अखण्ड सौ० श्री १०५ मती महाराणी साहिबा बघाट राज्य सोलन जन्मदिन ।
,,	,,	७ सोमवार	ता० १४	,,	सम्राट् षष्ठजार्ज जन्मदिन
पौष	कृष्ण	५ रविवार	ता० २७	,,	मेला बाबा हरवल्लभ जालन्धर
,,	,,	६ सोमवार	ता० २८	,,	अखिल भारतीय राष्ट्रिय महासभा (कांग्रेस) जन्म-दिन ।
,,	,,	८ बुधवार	ता० ३०	,,	भारतभूषण महामना श्री पं० मदनमोहन मालवीय जन्म-दिन।
पौष	शुक्ल	७ मंगलवार	ता० १२	जनवरी	श्री गुरु गोविन्दसिंह जयन्ती ।

त्रैमासिक भविष्य और राशिफल

[लेखक— गणकभास्कर श्री पं० सखाराम पुरुषोत्तमजी ज्योतिश्शास्त्री]

कार्तिक मासका भविष्य

इस मासमें जनताके मनमें उदासीनता बढ़े, वायुमें सर्दी अधिक हो वायुसे जनतामें अशांति हो, आरोग्यमान साधारणतः ठीक रहे। इस समय मङ्गल सायन वृश्चिक राशिमें भ्रमण कर रहा है सो अधिकारारूढ़ पक्षमें विशेष रोष बढ़े। मासमें पञ्च ग्रही योग राजकारक ग्रह सूर्य अपनी नीच राशिमें भ्रमण कर रहा है, इत्यादि योगोंको देखते हुए तो राष्ट्रोंमें लड़ाई, मारकाट होनेकी सम्भावना है। इसी समयमें परराष्ट्रोंमें अनेक प्रकारके उपद्रव हों। अधिकारी वर्गको यह समय अनुकूल नहीं है, तथापि उनको दूसरोंके अनेक झगड़े सुलझानेके लिए अत्यन्त कष्ट हो, कौंसिलोंमें मतभेद हों। महत्त्वकारक प्रस्तावों पर मतमतान्तर हों, देशभक्तों पर अनेक प्रकारके सङ्कट प्राप्त हों। अनेक मतोंका एकीकरण होनेकी अपेक्षा मतभेद हो। रेल, ट्राम, मोटरसे हानि हो। ग्रन्थकार, लेखक, प्रकाशक इनको यह समय कष्ट-कारक है। श्रमजीविवर्गमें असन्तोष हो।

कार्तिक मासका राशिफल

मेष शरीर सुख साधारण, व्यापारमें अनेक झगड़े उपस्थित हों, सार्वजनिक कार्यमें यश, भागीदारसे झगड़े, नौकर वर्गसे लाभ।

वृषभ प्रकृति स्वास्थ्य ठीक न रहे, उत्साह हानि, भाइयोंको कष्ट, कुटुम्बमें सुख, शत्रु वृद्धि, सम्मान वृद्धि, लाभ साधारण, उन्नति हो।

मिथुन आरोग्यवर्द्धक, उत्साहवृद्धि, थोड़ा प्रवास हो, मनोवृत्ति कृषिकर्ममें लगे, प्रपञ्चसे सुख हो, सत्पुरुष समागम, व्यापारसे लाभ, कोर्ट तथा राजदरबारसे यश।

कर्क गृहसौख्य उत्तम, पृथ्वीसे लाभ, नौकरीमें यह मास समाधानकारक व आनन्दवर्धक जायगा। नौकरोंसे सुख, सन्तति कष्ट, बौद्धिक कार्यसे प्रतिकूलता व टीका टिप्पणियां हों, अधिकारियोंसे लाभ, सम्मानवर्धक।

सिंह हरएक कार्यमें दक्षता रखना ठीक है नहीं तो पछताना पड़ेगा। उद्योगसे हानि, व्यापारसे लाभ, मनोवांछित कार्य हो। धार्मिक श्रद्धा वृद्धि, शरीर सुख उत्तम, व्यय थोड़ा।

कन्या भाइयोंसे लड़ाई झगड़ा तथा अन्यत्र भी कलह हो, शत्रुवृद्धि, सट्टा इत्यादि बन्द रखना नहीं तो भयङ्कर हानि होगी। राजदरबारसे हानि, शरीरसुख साधारण, लाभ न्यून, कुटुम्बसुख उत्तम।

तुला प्रकृतिमें जड़त्व, कामकाजसे हानि, मन-प्रवृत्ति साहसके कार्योंमें लगे परन्तु अंतमें अपयश, कुटुम्ब सुख, सन्तति सुख।

वृश्चिक आप अपने विचार स्वतन्त्रतासे चलावें तो ठीक है, गृहसौख्य, सन्ततिसौख्य, यह मास आपको लाभदायक है, नौकरोंसे हानि, सार्वजनिक कार्यमें यश।

धनु: शरीर उत्तम, सन्तोषवृत्ति, जनतासे सहानुभूति, कुटुम्ब पीड़ा, खेतीसे लाभ, सन्ततिसौख्यवृद्धि, प्रवास, अधिकारियोंसे लाभ।

मकर बुद्धि द्वारा कार्य करनेकी अच्छी अभि-लाषा हो तथापि इस समय मित्रोंसे विचार विनिमय करें। नौकर तथा पृथ्वीसम्बन्धी कार्यमें विशेष ध्यान दें। सन्ततिसौख्य, शत्रुवृद्धि, अधिकारियोंका रोष, लेनदेनके कामसे प्रतिकूलता हो।

कुम्भ शरीरसुख उत्तम, प्रापञ्चिक कष्ट, व्यापार से हानि, मन स्वास्थ्य ठीक न रहे। स्थावर साम्पत्तिक लाभ, नौकरोंसे लाभ, अधिकारियों से लाभ, यश, बौद्धिकवृद्धि।

मीन पराक्रम स्थानमें शनिका भ्रमण है अतः इस सम्पूर्णमासमें कर्तृत्व-शक्तिकी वृद्धि हो, प्रकृतिकष्ट, साम्पत्तिक प्रापञ्चिक कष्ट, सञ्चित-द्रव्य व्यय हो, धैर्य व उद्योगसे यश प्राप्त हो।

मार्गशीर्षमासका भविष्य

आरोग्य दृष्टिसे यह सम्पूर्ण मास साधारण है। मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें तिथि क्षय है अतः जनताकी संकटग्रस्त अवस्था रहे। सायन धनु मकरराशिका शुक्र खेतीवाड़ीको हानिकारक है। धनोत्पादक उद्योग धंदे-बैंक इनकी स्थिति समाधानकारक तथा धन्देवालोंको यह मास लाभप्रद होगा। डाकखाने टेलीफोनमें सुधारणा हो, किसान लोगोंको खेतीसे लाभ। राज्य-घरानेकी जनताके लिए आरोग्यवर्धक समय है, परन्तु राजकीय जनता संकटग्रस्त हो। अन्तस्थ दशा विचारणीय हो, भूकम्प हो, राष्ट्रोंमें तीव्र मतभेद हों, पारलियामेंटमें भारतकी उन्नतिके लिए चर्चा हो। स्टेट कोन्सिलमें मतभेद होकर पक्षोन्नति हो; चोरियां लूटमार अधिकतर हों; राजनैतिक बंदियों के विषयमें चर्चा शुरु होकर उनको मुक्तता मिले।

मार्गशीर्ष मासका राशिफल

मेष शरीरसुख उत्तम, छोटे तथा नौकरवर्गसे हानि। कुटुम्ब सौख्य, स्वामीकी प्रसन्नता, चित्त शान्त रहे; सन्तति सुख; भ्रातृसुख; लाभ थोड़ा।

वृषभ वात वृद्धिसे शरीरमें पीड़ा; नौकरोंसे लड़ाई झगड़ा हो; भूमिसे लाभ व समाधान, यशप्राप्ति; कुटुम्बमें अस्वस्थता बढ़े; वादविवादमें अपयश, व्यापारसे हानि!

मिथुन शरीर स्वास्थ्य उत्तम, यात्रासे हानि; इच्छित कार्यमें हानि या उपद्रव हों; संतति व कुटुम्बको आनन्द व आरोग्य। जनतासे सहानुभूति प्राप्त हो; नये उद्योगमें अपयश; लाभ सामान्य।

कर्क पूर्वसंचित द्रव्य व्यय होकर व्यापार धंदे चलते रहें। यह मास प्राप्तिकी दृष्टि से प्रतिकूल रहे; नौकरवर्गसे लाभ; गृहसौख्य उत्तम; संतति स्वास्थ्य उत्तम, कुटुम्ब सौख्य।

सिंह मनोवाञ्छित कार्यमें बाधा हो; नौकरोंसे लाभ; अधिकारी वर्गका रोष; हिस्सेदारों से झगड़ा हो, व्यापारसे हानि, सामाजिक कार्यमें उन्नति, लाभ कार्यमें प्रथमतः हानि व अन्तमें लाभ हो।

कन्या भाग्योन्नति, यशप्राप्ति, नौकरोंसे प्रेम व सहानुभूति हो, भ्रातृसुख; हस्तगत कार्य कीर्तिवर्धक व सम्मानवर्धक हो; लेनदेनसे लाभ, संतति सुख, कुटुम्ब सुख।

तुला यश प्राप्ति हो, प्रकृति स्वास्थ्य उत्तम; उत्साह वृद्धि; भ्रातृसुख, सांपत्तिक हानि अवनति; कुटुम्ब सुख; संततिसुख।

वृश्चिक प्रवास करनेकी इच्छा उत्पन्न हो; प्रकृतिस्वास्थ्य उत्तम, गृहसौख्य उत्तम, भ्रातृसुख, नौकरीमें अधिक परिश्रम; अधिकारियोंका रोष; कार्यमें प्रतिकूलता; गुप्त शत्रु उत्पन्न हों।

धन कुटुम्बसे उपसर्ग; मनःस्वास्थ्य उत्तम न रहे; सांपत्तिक कष्ट व अवनति। मित्रोंसे भेंट; उदासीनता; अधिक परिश्रम; विश्वासघात; हानिसे बचो, अपयश।

मकर मनमें अद्भुत विचार। भूमिसे लाभ; कार्यमें असफलता, मन अस्थिर, परिश्रम अधिक; निराशाजनक परिस्थिति प्राप्त हो, कुटुम्ब पीड़ा, व्यय अधिक; बौद्धिक उन्नति।

कुम्भ बौद्धिक कार्यमें उन्नति; पुत्रपौत्रसे सुख प्राप्त हो; राज्यपक्षसे यश, संतति कष्ट, राज्यसे मान सम्मान तथा सहानुभूति हो, उद्योग साधारण, भूमिसे लाभ, कुटुम्बमें आरोग्यता; साहित्य सेवा, गृहकलह।

मीन प्रकृति स्वास्थ्य उत्तम, भ्रातृसुख, गृहमें असन्तोष; इष्टमित्रोंसे वादविवाद, अधिकारीवर्गकी अप्रसन्नता; कुटुम्बसुख; संततिसुख, जनतासे हानि।

पौषमासका भविष्य

जनता व अधिकारीवर्गमें मेल हो, यह मास आरोग्यवर्धक, उत्साहप्रद व शान्तताजनक है। राष्ट्रोंसे महत्त्वकारक कर सम्बन्धी प्रश्न उत्पन्न हों, अनेक कर प्रचलित हों; नये उद्योग व्यापारमें बढ़ती हो, समुद्र सम्बन्धी काम करने वालोंको यह समय अपघातात्मक है। धार्मिक विरोध वृद्धि। वकील, बैरिस्टर तथा जज इनमें से किसी महान् व्यक्तिकी मृत्यु हो। कृषकवर्ग को यह समय सुख समाधानकारक तथा लाभप्रद हो, सामाजिक सुधार हो; पक्ष भेदका भूत संसारमें प्रचलित हो। हड़तालें इस समय बहुत जोरोंसे पड़ेंगी, श्रमजीवीवर्गको संकट। इस मासमें वक्रगत्या गुरु मिथुन राशिमें है। यह विशेष भयप्रद, कलहप्रद व रण संग्राम उत्तेजक है। उष्णताकी वृद्धि, वायु-विकार, इसी मासमें सायन धनु राशिका मंगल उष्णताकी वृद्धि करने वाला है व कपास, कपड़ा, घी, घास तथा धान्योंमें अति तेजी हो।

पौषमासका राशिफल

मेष शरीर उत्तम, मनोवृत्ति आनन्दित, कुटुम्ब सुख, व्यापार वृद्धि, भूमिसे लाभ; यह समय संतोष तथा लाभकारक है। संतति सुख।

वृषभ साम्पत्तिक संकट, लाभमें बाधा, व्यापार में लड़ाई झगड़े उत्पन्न हों, विरोधी जनतासे दुःख, अधिकारियोंकी प्रसन्नता, कुटुम्ब सुख; संतति दुःख, भ्रातृ कलह, निन्दा स्तुति हो।

मिथुन साम्पत्तिक लाभ, व्यापारमें उन्नति, नौकरोंसे लाभ, अधिकारियोंकी प्रसन्नता, इष्ट मित्रोंसे इच्छित कार्यमें सहायता तथा सहानुभूति, नये काम मन्द गतिसे प्रचलित हों। प्राप्ति मान साधारण, निन्दापवाद सहन करना पड़े।

कर्क व्यापारमें अनुकूलता, सन्तति तथा कुटुम्ब सुख, साम्पत्तिक संकट, सहानुभूति तथा प्रेम प्राप्त हो, शरीर सुख उत्तम, भ्रातृकलह।

सिंह निराशाका आसरा पकड़ना पड़े, विश्वासघात, धार्मिक वृद्धि, सन्तति सुख, कुटुम्ब वियोग, भ्रातृ कलह, मंगलकार्य हो।

कन्या बौद्धिक कार्यमें प्रगति, लाभ-व्यय समान रहे, अनपेक्षित व्यय हो, परिवारमें लड़ाई झगड़े हों, सार्वजनिक कार्यमें भाग लेना पड़े। कुटुम्ब दुःख, भ्रातृ कलह, सन्तति सुख।

तुला बौद्धिक कार्यसे अवनति, पूर्वार्जित द्रव्य व्यय हो, यश प्राप्ति, लाभ प्राप्ति, इष्ट-मित्रोंसे सन्तोष, सम्मान वृद्धि, कुटुम्ब सुख, सन्तति सुख, भ्रातृ कलह, अधिकारियोंका रोष।

वृश्चिक स्वास्थ्य साधारण, मनमें उदासीनता गृह सौख्य उत्तम, भूमिसे हानि, इष्ट मित्रोंसे उपसर्ग, कुटुम्ब पीड़ा, व्यय अधिक, लाभ थोड़ा, सन्तति सुख, भ्रातृ वियोग, स्त्री दुःख।

धनुः उष्ण विकारसे दुःख, प्रापंचिक संकट, गृहमें उद्विग्नता, चिड़चिड़ापन, स्त्री-पीड़ा, व्यापारसे हानि, नये उद्योगसे हानियां प्राप्त हों, नौकरीसे कष्ट, सन्तति स्वास्थ्य उत्तम, भ्रातृ सुख, पड़ोसियोंसे लाभ।

मकर मनोवांछित कार्यमें उन्नति, इष्ट मित्रोंसे मतभेद, गृहभेद, नौकरवर्गसे हानि, सन्तति कष्ट, अपयश, स्त्री सुख, भ्रातृ दुःख, शरीर स्वास्थ्य उत्तम, मनोवृत्ति चंचल हो।

कुम्भ शरीर स्वास्थ्य साधारण, कृषि कर्ममें अधिक परिश्रम हो, साधारण हानि, कलह वृद्धि, नौकरोंसे हानि, इष्ट मित्रोंसे सहानुभूतिका अभाव, संतति कष्ट, वाहनसे भय, भाइयों में झगड़ा उत्पन्न हो।

मीन प्राप्ति साधारण, वेतन वृद्धिका अवसर मिले, अधिकारियोंकी प्रसन्नता रहे। जनतासे सम्मान, धन प्राप्ति परन्तु भाग्य वृद्धिमें बाधा पड़े। स्त्री सुख, सन्तति सुख, भ्रातृ सुख, शरीर सुख उत्तम, मनमें प्रसन्नता।

त्रैमासिक ग्रहयोग-प्रतियोग चमत्कार

[लेखक:—श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी, सम्पादक "श्रीस्वाध्याय"]

यद्यपि प्रतियोगको ज्योतिर्विद्संसार तो सम्यक्तया जानता ही है, तथापि 'श्रीस्वाध्याय' के सर्वसाधारण पाठक भी इस प्रतियोगके स्वरूपको भलीभांति जान जायँ इस लिए हम इसका यहां स्पष्टीकरण कर देते हैं। एक भचक्र या १२ राशियोंमें ३६० अंशोंकी कल्पना कीगई है, इनमें ठीक ६ राशिके अन्तरसे जो ग्रह परस्पर एक दूसरेके सम्मुख हो वे दोनों प्रतियोग कर रहे हैं ऐसा कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जिन दो ग्रहोंका प्रतियोग होता है उनमें ठीक १८० अंशका अन्तर रहता है। इसी कारण ये दोनों परस्पर सम्मुख आये हुए ग्रह एक दूसरेको पूर्णरूपसे देखते हैं तथा अपनी अपनी ओर खींचते रहते हैं। उन दोनोंके परस्पर आकर्षणका जो कुछ इष्ट अथवा अनिष्ट परिणाम होता है वह समस्त भूमण्डल पर पड़ता है। प्रतियोगका फल अधिकतर अशुभ ही होता है—

> परस्पर ग्रहाणां च सप्तम: प्रतियोगक:।
> अनिष्टं च भवेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा॥

मङ्गलशनि प्रतियोग

इन तीन मासोंमें महत्त्वका प्रतियोग मङ्गल-शनिका है। यह पौष कृ० ३ शुक्रवार अर्धरात्रोत्तर स्टेण्डर्ड-टाईम घण्टा ४ मिनट २५ पर ता० २६ दिसम्बर १९४२ ई० को हो रहा है। शनि तथा मङ्गल ये दोनों ग्रह अहिनकुलके समान वज्रवैरी हैं। शनि कृष्णवर्ण प्रधान और मङ्गल रक्तवर्ण प्रधान ग्रह हैं। कृष्णवर्ण दूसरोंको हानि, परद्रव्यापहार आदि दोषोंका द्योतक है। समस्त भूमण्डलमें काला रङ्ग विनाशकारक अशुभरूप माना गया है। इसी कारण कालेरंगके जितने भी कार्य हो सकते हैं वे सब स्वभावत: शनिमें प्राय: निवास करते हैं। पापग्रहोंमें शनिको इसी कारण मुख्य स्थान प्राप्त है। मङ्गलका वर्ण रक्त है, यह वर्ण क्रोधका द्योतक है। युद्धादिक क्रोधके विना हो नहीं सकते, इसी कारण रक्तवर्ण रक्तपात, अपघात युद्ध आदिका द्योतक है। पाप ग्रहोंमें इसका (मङ्गलका) दूसरा स्थान है। कारण रक्तवर्णका परिमाण अत्यन्त बढ़ जाने पर कालेरंगमें परिणत हो जाता है। विनाशकारक कार्योंका प्रारम्भ सूचक रक्तवर्ण है, किन्तु उसको पूर्णतामें पहुंचाने वाला कृष्णवर्ण ही है। यहां रक्त और कृष्ण (मं० श०) का प्रतियोग महान् भयानक रूपसे हो रहा है, अत: सर्वथा इसका फल अनिष्ट होना ही चाहिए।

यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिए कि आर्य और अनार्य व्यवस्थामें अत्यन्त विरोध होनेके कारण तथा संसारमें शान्ति स्थापनाके लिए आर्य व्यवस्थाका ही समर्थन होना स्वभावतया सम्मानित होनेके कारण आर्योंके अनिष्टको ही अनिष्ट कहा गया है। यद्यपि आर्योंको हानि होनेसे अनार्योंका कल्याण परिणाममें सम्भावित नहीं तथापि आर्योंके अनिष्टको ही अनार्य लोग प्राय: इष्ट समझा करते हैं। यह अनार्योंकी भूल हो अथवा उनका स्वभाव ही ऐसा हो यह निर्णय बुद्धिमान् स्वयं कर सकते हैं।

इस प्रतियोगका फल

बड़े बड़े राष्ट्रोंमें रक्तपात, मारधाड़, पारस्परिक कलह, असन्तोष, सामूहिक गत्यवरोध, रोगवृद्धि और राजवर्गमें मृत्युकी भी सम्भावना है। प्रचलित महायुद्ध उग्ररूप धारण करेगा, वायुप्रकोप, शीताधिक्य—हिमपात तथा कभी कभी कहीं कहीं भूकम्प भी होंगे। अरब, आस्ट्रेलिया, हङ्गरी, स्पेन, अमेरिकाके संयुक्त राज्य, बेल्जियम, इजिप्ट, वेल्स, आरमेनिया आदि देशोंमें तथा हमारे भारतवर्षमें ब्रह्मदेश, दिल्ली,

द्वारका, बम्बई, उड़ीसा, आसाम, कृष्णासे लङ्का तथा कृष्णासे गोदावरीके बीचके प्रदेशोंमें इस प्रतियोगके अनिष्ट परिणाम अधिक होंगे। इस प्रतियोगका परिणाम दूसरी राशिमें प्रतियोग होने पर्यन्त होता रहेगा।

रविगुरु प्रतियोग

हिरण्यगर्भ ब्रह्मदेवके सात मानस पुत्र हैं, जिनमेंसे एक महर्षि अङ्गिरा भी हैं। इन्हीं अङ्गिरा महर्षिके सुपुत्र देवगुरु बृहस्पति हैं। अङ्गिरा महर्षिकी धर्मपत्नी श्रद्धा है। इसके सिनीवाली, कुहू, वृद्धा, राका तथा अनुमति ये पांच कन्यायें तथा एक पुत्र हैं। यही पुत्र बृहस्पति नामसे प्रसिद्ध हुआ। नभोमण्डलमें शुक्रको छोड़कर सबसे अधिक तेजस्वी चमकीला ग्रह बृहस्पति ही है। यद्यपि शुक्र आकाशमें अत्यन्त चमकीला दिखाई देता है, जिसके सम्मुख बृहस्पति ग्रहका तेज भी न्यून भासित होता है, किन्तु गुरु ग्रह आकारसे सभी ग्रहोंमें बहुत बड़ा है। साधारण आंखोंसे आकाशमें छोटासा चमकीला एक बिन्दु मात्र दिखाई देता है। दूरवीक्षण यन्त्रसे यह भलीभांति बहुत बड़ा दिखाई देता है। सूर्यके साथ इसका प्रतियोग लगभग प्रति १३ मासके अन्तरसे होता रहता है। इन तीन मासों में सूर्य-बृहस्पतिका प्रतियोग पौष शु० ५ सोमवार ता० ११ जनवरी १९४३ ई० को मध्यान्होत्तर स्टै० टा० घण्टा १३ मिनट ४९ पर हो रहा है। बृहस्पतिके चार चन्द्र उपग्रह हैं ऐसा पाश्चात्य ज्योतिषियोंका मत है। इन उपग्रहोंकी छायासे गुरुको तथा गुरुकी छायासे उन उपग्रहोंको ग्रहण लगते रहते हैं, अस्तु।

प्रतियोगका फल

लोगोंकी आर्थिक स्थिति तथा व्यापारमें बहुत उलटफेर होंगे, सम्भव है सुवर्ण बहुत महंगा हो जावे। आरोग्य दृष्टिसे वातावरण बहुत बिगड़ेगा। स्काटलेण्ड, हालेण्ड, पश्चिम तथा उत्तर अफ्रिका, अफगानिस्थान, बल्गेरिया, ग्रीस इन देशोंमें इस प्रतियोगका परिणाम अधिक होगा। भारतवर्षमें विदर्भ (बरार) महाराष्ट्र, अश्मक (खानदेश) सौराष्ट्र (काठियावाड़) कोलापुर तथा गोदावरी और विन्ध्य-पर्वत एवं विन्ध्यपर्वत और गङ्गाके बीचके प्रदेशोंमें इसका प्रभाव अधिक होगा।

रविशनि प्रतियोग

शनिकी उत्पत्तिके विषयमें हमारे भारतीय महर्षियोंने यों लिखा है कि दक्षप्रजापतिकी एक कन्या जिसका नाम संज्ञा था उसका विवाह सूर्यसे हुआ। उससे मनु तथा यम नामके दो पुत्र और यमुना नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। सम्पूर्ण प्रकारके तेजों का घर होनेके कारण सूर्यकी अत्यन्त प्रखर तेजस्विताको उसकी (सूर्यकी) धर्मपत्नी संज्ञा अपने पति के तेजको न सह सकनेके कारण बारम्बार समागम नहीं कर सकती थी। इसी कारण सूर्यके रतिसुखमें संज्ञाकी ओरसे बहुत बाधा पड़ने लगी। इस सङ्कटको दूर करनेके लिए ही संज्ञाने अपने स्वरूपके समान ही स्वरूपवाली एक स्त्रीका निर्माण किया--उसका नाम छाया रक्खा। अपने घरेलू सारे ही कामकाज उस छायाको सौंपकर संज्ञा अपने पिता दक्षप्रजापतिके घर चली गई। इधर छाया अपने पति सूर्यकी सेवा संज्ञासे भी अधिक अच्छी करने लगी। छायाको सूर्यसे तापी नामकी कन्या और शनि नामक पुत्र इस प्रकार दो सन्तान हुई। शनिका जन्म पौष शु० ८ रेवती नक्षत्रमें सूर्यास्तके समय हुआ था। सूर्य पुत्रमुख देखनेके लिए अपने घरमें गया ही था कि उसके सारथी अरुण पर शनिकी दृष्टि पड़ गई। दृष्टि पड़ते ही अरुण पङ्गु होगया, अस्तु।

बृहस्पतिके अनन्तर ग्रहोंमें तेजस्वितामें दूसरा स्थान शनिका ही है। आकाशमें शनि जब अधिक तेजस्वी दिखाई देता है तब उसका फल वाराही संहितामें यों लिखा है—

> वैडूर्य्यकान्तिविमलः शुभकृत् प्रजानाम्।
> बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च भश्च ॥
> यच्चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान्।
> सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनि प्रवादः ॥

इन तीन मासोंमें मार्गशीर्ष कृष्ण ८ मङ्गलवार ता० २ दिसम्बर १९४२ ई० को स्टेण्डर्ड टाइम घं० २ मि. ५२ (अर्धरात्रोत्तर) रवि-शनिका प्रतियोग हो रहा है। इस समय शनि कुछ पीतवर्ण सा दिखाई देगा, इस कारण दुर्भिक्ष पड़ेगा। शनिके उपग्रह आठ चंद्रमा हैं। वे आठों चन्द्र अपनी अपनी पृथक् पृथक् कलाओंसे स्वयं चमकते हुए शनिके विलक्षण सौन्दर्यको और भी अधिक चमकाते रहते हैं।

प्रतियोगका फल

व्यापार, दासवर्ग, श्रमजीवीवर्गमें भांति-भांतिके उपद्रव होंगे। राजवर्ग अथवा अधिकारीवर्गमें कई मृत्युएं होंगी। यह समय अत्यन्त अनिष्टकर है। तात्कालिक शासन-पद्धति अत्यधिक डावांडोल हो उठेगी। अमेरिकाके छोटे-मोटे राज्य, बेलजियम, इजिप्ट, वेल्स, आर्मेनिया, अरब, आस्ट्रेलिया इन देशोंमें, तथा भारतमें ब्रह्मा, दिल्ली, बम्बई, उड़ीसा आसाम कृष्णा गोतमीका मध्यदेश, इन देशोंमें इसका परिणाम अधिक होगा।

रविहर्शल प्रतियोग

जिन लोगोंने आकाशमें भौमादि पांच ताराग्रहों को देखा है उन लोगोंसे यदि कहा जाय कि उन्हीं ग्रहों जैसे दो ग्रह और भी आकाशमें हैं तो वे लोग आश्चर्य चकित होकर कहने लग जायेंगे कि "कहां है ? दिखाओ हमें" यदि वे ग्रह बृहस्पति तथा शुक्रके समान तेजस्वी दिखाई देने लग जांय तो उन्हें बड़ा आनन्द होगा। किन्तु हम उन्हें कह देते हैं कि ये ग्रह साधारण आंखोंसे दिखाई नहीं देते। इनको देखनेके लिये बड़े-बड़े दूरवीक्षण यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। कारण, इन दोनों ग्रहोंकी कक्षाएं शनिकी कक्षासे बहुत दूर है। हर्शलको सूर्यके चारों ओर प्रदक्षिणा करनेके लिये ८४ वर्ष लग जाते हैं, अर्थात् १ राशिमें सात वर्ष तक रहता है। हर्शलके ४ चन्द्र उपग्रह हैं। इन उपग्रहोंका दृश्य इस प्रतियोगके समय दूरवीक्षण यन्त्रसे बहुत स्पष्ट तथा दैवज्ञोंको आनन्द देने वाला चमत्कारिक दिखाई देता है। इन तीन मासोंमें मार्गशीर्ष कृष्ण ३ बुधवार ता० २५ नवम्बर १९४२ ई० को मध्यान्होत्तर स्टे. टा. घं. १८ मि. १६ पर सूर्य हर्शलका प्रतियोग हो रहा है।

प्रतियोगका फल

स्थान-स्थान पर सामूहिक गत्यवरोध, अस्वस्थता, व्यवस्थापिका सभाओंमें तीव्र मतभेद होंगे। राष्ट्रिय नेताओं पर महान् आपत्तियां आयेंगी। राजसत्ताके साथ घोर विरोधकी सम्भावना है। दमन; अत्याचार अवृष्टि, अकाल, मंहगाई, डाके, षड्यन्त्र आदि-आदि दुष्ट फल परम्परा प्रारम्भ होंगी। इसके अतिरिक्त ग्रान्थिकसन्निपात (प्लेग) महामारी आदि सांसर्गिक रोग अधिक होंगे। ये सब फल प्रायः सभी देशोंमें दिखाई देंगे।

कार्तिक शु० ४ शुक्रवारको बुध-हर्शल प्रतियोगका फल—देशमें असन्तोष, सामूहिक उपद्रव, अपघात आदि अत्याचार अधिक हों।

मार्गशीर्ष कृष्ण २ मंगलवारको शुक्र-हर्शल प्रतियोगका फल—संसारकी आर्थिक स्थिति डांवाडोल रहे।

मार्गशीर्ष शु० ११ शुक्रवारको मंगल-हर्शल प्रतियोगका फल—आकस्मिक भयानक वार्ताएं तथा सहसा कई प्रकारके भाग दौड़के प्रश्न उपस्थित हों, असन्तोष बढ़े, व्यवस्थापिका सभाके सभासद तथा अधिकारीवर्ग दोनों पर इसका अनिष्ट परिणाम होगा, सम्भव है दोनों पक्षोंमें अनबन हो। सामूहिक उपद्रव, रक्तपात, मारधाड़ और डाके लूटमार आदि अधिक होंगे, भूकम्पकी भी सम्भावना है।

पौष कृ० ७ मंगलवारको बुधगुरु प्रतियोगका फल—समाज सुधारक तथा प्राचीनमतके पृष्ठपोषकोंमें मतभेद होकर कलहवृद्धि हो।

स्वाध्यायकी महिमा

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः

[लेखक—श्री १०८ स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराज गिरि]

ऋषि-मुनियोंने स्वाध्याय अध्यय करनेका विधान किया है। प्रतिदिन सन्ध्यादि नित्यकर्मको नहीं करनेसे जैसा प्रत्यवाय होता है, ऐसा ही स्वाध्यायको अध्ययन नहीं करनेसे पाप होता है। वेदाध्ययनसे मनुष्य अपने स्वरूपको प्राप्त होता है। 'स्व' अर्थात् अपना स्वरूप क्या है यही वेद उपदेश कर रहे हैं। ऋषि-मुनियोंने अपने विशुद्ध-हृदयमें जो सत्य-स्वरूप को अनुभूति की थी, उसी अनुभूतिको मनुष्यसमाजके कल्याणके लिये शास्त्रोंमें उपदेश किया गया है। इसी लिये स्वाध्यायसे स्वस्वरूपका ज्ञान होता है। निःश्रेयस या मोक्ष मनुष्यका स्वरूप है। सच्चिदानन्द ही मोक्ष है। पूर्ण स्वातन्त्र्य ही आनन्दस्वरूप है। स्वातन्त्र्य ही सर्वविध उन्नतिका मूल है। प्रत्येक मनुष्य नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप है। इस स्वरूपको प्राप्त करनेके लिए एक स्वाधीन समाजकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये, तथा स्वाधीन समाजकी रक्षाके लिये चाहिये एक स्वतन्त्र देश। स्वतन्त्र-देशकी सुव्यवस्था तथा सभ्यताके संरक्षणके लिये स्वतन्त्र राष्ट्रका प्रयोजन होता है। स्वतन्त्र-जातीय-राष्ट्रिय शक्ति ही समाजका मेरु-दण्ड है। स्वतन्त्र राष्ट्रिय शक्ति बिना समाज मेरु-दण्डहीन प्राणियोंके सदृश खड़ा नहीं रह सकता है।

स्वतन्त्र जातीय राष्ट्र ही मनुष्य समाजकी चारों शक्तियोंका सुमहान् बहिःप्रतीक है। सम्पूर्ण मनुष्य समाजमें प्रधानतः चारों शक्तियोंका विकाश देख पड़ता है। वैदिक आर्यसमाजमें इन चारों शक्तियों को ब्रह्म, क्षत्र, वैश्य तथा शूद्र नामसे कहा गया है। आर्येतर मनुष्य समाजमें भी उन शक्तियोंको पादरी (Missinary), फौजी (Military), व्यापारी (Merchant), तथा मजदूर (Labourer) इन चारों नामोंसे विहित किया गया है। उपर्युक्त चारों शक्तियोंके सुनियत सुव्यवस्थित उत्कर्षके लिये धर्म या विधि-निषेध मूलक शास्त्र (Laws) का प्रयोजन है। श्रुतिमें कहा है कि प्रजापतिने ब्राह्मणोंकी सृष्टि करके देखा कि सृष्टिकार्य नहीं चल सकता है। फिर उसने क्षत्रियोंकी सृष्टिकी. परन्तु क्षत्रिय सृष्टिके पश्चात् भी उसने देखा कि सृष्टिकार्य सुश्रृंखल रूप से नहीं चलता है। यह देखकर प्रजापतिने क्रमशः वैश्य तथा शूद्रोंकी सृष्टि की। परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारोंकी सृष्टि करने पर भी प्रजापतिने देखा कि उनका सृष्टिकार्य नहीं चलता है। यह देखकर प्रजापतिने धर्मकी सृष्टि की। जब धर्मकी सृष्टि हुई, तब सृष्टिकार्य सुन्दर, सुश्रृङ्खलरूपसे चलने लगा। इससे विदित होता है कि वैदिक-धर्म-नियन्त्रित राष्ट्र ही मनुष्य समाजका प्रकृत कल्याण साधन कर सकता है।

वैदिक समाज-तत्त्वकी आलोचनासे सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारे ऋषि मुनियोंने मनुष्योंके लिये चारों पुरुषार्थोंका विधान किया है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, यह ही चारों पुरुषार्थ हैं। इन चारों पुरुषार्थोंके दो-दो रूप हैं। एक व्यावहारिक, दूसरा पारमार्थिक। प्रथम धर्मके व्यावहारिक तथा पारमार्थिक ये दो रूप हैं। समाज व्यवस्थाके लिये विधि-निषेध-मूलक शास्त्र ही धर्मका व्यावहारिक रूप है। देश, काल, पात्रके अनुसार धर्मके अनुसार धर्मके इस व्यावहारिक रूपका परिवर्तन होता रहता है। यदि देश, काल, पात्रके अनुसार धर्मके इस व्यावहारिक रूपका परिवर्तन नहीं किया जाए तो समाजमें विश्रृङ्खलताकी उत्पत्ति होती है। इसीलिए वैदिकसमाजमें

समय-समय पर धर्मके व्यावहारिक रूपका परिवर्तन करनेका प्रयोजन हुआ है। इस कारण वैदिकसमाज में बहुधर्मसंहिता तथा स्मृति-शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है, परन्तु धर्मका पारमार्थिक रूप ही व्यावहारिक रूपकी मूलभित्ति है। व्यावहारिक रूपका परिवर्तन होता रहता है, परन्तु पारमार्थिकधर्मका परिवर्तन कभी भी नहीं हो सकता। मनुष्यका धर्म है मनुष्यत्व, मनुष्य से इस मनुष्यत्वको निकाल लेनेसे मनुष्य कभी मनुष्यपदवाच्य नहीं रहेगा। अग्निका धर्म है उष्णता तथा प्रकाश। अग्निसे इस उष्णता तथा प्रकाशको निकाल दिया जाए तो अग्नि, अग्नि नहीं रहेगी। धर्मका पारमार्थिक रूप वही है जोकि सम्पूर्ण विश्व को धारण करके विराजमान है। यदि मिट्टीसे, उद्भिज से, प्राणियोंसे, मनुष्योंसे, देवताओंसे, सम्पूर्ण विश्व प्रपञ्चसे इस पारमार्थिक धर्मको पृथक् कर दिया जाए तो स्थूल-सूक्ष्मात्मक जड़-चेतनमय यह विश्व-प्रपञ्च अस्तित्व-हीन आकाश-कुसुम-वत् हो जाएगा। यह पारमार्थिक धर्म सच्चिदानन्द ही है। यह सच्चित्-आनन्द सम्पूर्ण प्राणियों का स्वरूप है। अतः कोई भी इस पारमार्थिक धर्मका त्याग नहीं कर सकता।

वैदिक ऋषि-मुनियोंने अपने शुद्ध हृदयमें उपलब्धि की थी कि यह सच्चिदानन्द ही आत्मा है, यह सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा ही—

"सर्वेश्वरः, एष सर्वज्ञः, एष अन्तर्यामी,
एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्"

अपने इस स्वातन्त्र्य तथा स्वरूपका अज्ञान ही सर्वविध दुःखोंका कारण है। अतएव उन्होंने मनुष्यों के इस अपने नित्यंस्थायी स्वरूप अथवा स्वातन्त्र्य शक्तिमान्, सच्चिदानन्द घन एवं पारमार्थिक धर्मकी नींवों पर वैदिक-समाज-रूप प्रासादकी प्रतिष्ठा करके व्यष्टि तथा समष्टि रूपसे मनुष्य समाजको अपने प्रकृत कल्याण रूप स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिके लिए व्यावहारिक धर्म द्वारा प्रचलित किया था।

जैसे धर्मके दो रूप हैं, वैसे ही अर्थके भी दो रूप हैं। वेद भगवान् कहते हैं कि मानुषवित्त तथा दैववित्त इन दो प्रकारके भेदोंसे अर्थके भी दो रूप होते हैं। ऐहिक ऐश्वर्यको मानुषवित्त कहा जाता है और देवता विज्ञान ही दैववित्त है। यहां देवता शब्द से अभिप्राय मन तथा इन्द्रियोंका अपरिच्छिन्नत्व है, तथा दैववित्त वही है जो इस अपरिच्छिन्नत्वको प्राप्त कराए, तथा मानुषवित्तका व्यवहार इस प्रकार होना चाहिए कि जिससे मनुष्यका परिच्छिन्नत्व दूर हो जावे और वह गीतामें श्रीकृष्ण भगवान् द्वारा कही गई दैवी-सम्पदाका अधिकारी बन सके।

काम ही सर्वकर्मों का मूल है। इच्छाशक्तिको ही काम कहा जाता है। श्रुतिमें परमात्माकी तीन पराशक्तियां कही हैं—

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वभाविकीज्ञानबलक्रिया च'।

भगवानकी पराशक्ति विविध प्रकारसे विराजमान है। परन्तु ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति तथा क्रिया-शक्ति स्वाभाविकी है। स्वातन्त्र्य-शक्तिमान् भगवान्‌की पराशक्तिका ही एक रूप है काम या इच्छा शक्ति। यह परा इच्छाशक्ति ही "बहुस्यां प्रजायेम" में बहुरूपमें प्रकट हूंगा, इस रूपमें भगवान्‌में उदय होती है। भगवान्‌की यह कामाख्या परा इच्छा-शक्ति अखण्डा, एकरसा, चैतन्यमयी तथा खण्डा, सत्वरजस्तमोमयी, जड़ा, परिणामिनी, यह दो रूप धारण करके विश्व प्रपञ्चमें क्रिया कर रही है। इन दो रूपोंको निवृत्ति तथा प्रवृत्ति नामसे अभिहित किया जाता है। काम का जो प्रवृत्ति रूप है, वह मनुष्योंके चित्तमें खण्ड-भावका, परिच्छिन्न बुद्धिका प्रकाश करके अहंता, ममता तथा इदंता रूप भेद ज्ञानका विकाश कराता है। यह प्रवृत्ति रूप काम मनुष्योंको केवल ऐहिक भोगैश्वर्य्यमें आसक्त करके दुःखार्णवमें गिराता है। इसी लिए ऋषिमुनियोंने वेदविहित व्यावहारिक धर्म द्वारा (by laws) इस प्रवृत्ति रूप कामको संयत करके मनुष्य-समाजको चैतन्यमयी, अखण्डा, एकरसा, निवृत्तिरूपा भगवान्‌की परा-शक्तिका विहार-क्षेत्र बनानेकी चेष्टा की थी। वैदिक-समाजमें इसी लिए शास्त्र-विहित भोग करते हुए भी मनुष्य परम कल्याण

को प्राप्त कर सकता था। क्योंकि प्रवृत्तिरूप काम पारमार्थिक धर्म-मूलक व्यावहारिक धर्म द्वारा परिष्कृत करके निवृत्त मार्गमें प्रवाहित किया जाता था।

मोक्ष भी पारमार्थिक तथा व्यावहारिक रूपसे दो प्रकारके हैं। उस त्यागमूलक निवृत्तिमूलक जातीय राष्ट्रकी स्वतन्त्रता ही व्यावहारिक मोक्ष है, जोकि पारमार्थिक मोक्षको आदर्श रूप रखकर ही स्थापित हुआ हो। जातीय राष्ट्र स्वतन्त्र होनेसे भी यदि वह निवृत्तिमूलक नहीं हो तथा उस राष्ट्रका लक्ष्य यदि निःश्रेयस रूप पारमार्थिक मोक्ष (Freedom real Freedom) न हो तो वह राष्ट्र तथा सभ्यता आसुरी राष्ट्र, आसुरी सभ्यता कही जावेगी। वह राष्ट्र, वह सभ्यता, जगत्के अनर्थका कारण होंगी। उस राष्ट्र, उस सभ्यताका विध्वंस अनिवार्य है।

इस समय सम्पूर्ण जगत्में आसुरी राष्ट्र, आसुरी सभ्यताका अभ्युदय होनेके कारण मनुष्य समाजमें केवल दुःख, अशान्ति वर्धित हो रही है। परन्तु अखण्डनीय ईश्वरीय नियमसे अब इस आसुरी राष्ट्र तथा आसुरी सभ्यताका ध्वंस हो रहा है। बङ्गदेशमें दुर्गा भगवतीकी प्रतिमामें धर्मराष्ट्रकी एक सुन्दर कल्पना की गई है। निवृत्तिमूला परा शक्ति ही दुर्गाकी द्योतक है। दुर्ग शब्दका अर्थ है दुःखसे अर्थात् दुःख सहनेसे जिसकी प्राप्ति होती है, महामारी मृत्यु इत्यादि सम्पूर्ण अनर्थराशिसे जो परमेश्वरी शक्ति प्राणियोंको मुक्त कर देती है वह शक्ति दुर्गा है। बङ्गदेशमें दुर्गा प्रतिमामें दुर्गा देवी बीचमें खड़ी हैं। दुर्गादेवीका एक चरण असुरके कन्धे पर और दूसरा चरण सिंहकी पृष्ठके ऊपर रहता है। उनकी एक पार्श्वमें कार्तिकेय तथा सरस्वती, अपर पार्श्वमें गणेशजी तथा लक्ष्मी विराज रही हैं। दुर्गादेवीके ऊर्ध्व भागमें शिवजी आसीन हैं। प्रवृत्ति-मूलक भोगैश्वर्यकी पराकाष्ठा तथा खण्डा, जड़ा भेदात्मिका, सत्व-रजस्तमोमयी आसुरी शक्तिका प्रतीक हैं सिंह तथा महिषासुर। इस आसुरी शक्तिको सम्पूर्ण रूपसे संयत, वशीभूत करने पर ही धर्मराष्ट्रकी प्रतिष्ठा होती है। इसी लिए असुर तथा सिंहको देवीके चरणके नीचे रक्खा गया है। मनुष्य समाजका लक्ष्य यह सच्चिदानन्द स्वातन्त्र्य शक्तिमान् परम कल्याणमय शिव ही हैं। आसुरी, पाशविक, अविद्या शक्तिको दैवीशक्तिमें अथवा चैतन्यमयी, आनन्दमयी, अखण्डा, नित्या, एकरसा परा शक्तिमें रूपान्तरित करनेके लिए दिव्य बलरूपी देव-सेनापति कार्त्तिकेय का प्रयोजन होता है ताकि अविद्यारूपिणी जड़ा शक्ति मनुष्य समाजमें पुनः भेद-ज्ञान, आत्मस्वरूप सम्बन्धी भ्रान्त-परिछिन्न ज्ञानकी उत्पत्ति न कर सके। जब मनुष्य समाज उक्त, कार्त्तिकेय रूप दिव्य आत्म-बलसे बलवान् हो जावेगा, तब उस समाजमें ऐहिक ऐश्वर्य तथा दिव्य विभूतियोंकी प्रतीक लक्ष्मीजी चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहेंगी। यतः ऐहिक ऐश्वर्य तथा दिव्य-विभूतियां फिर मनुष्य समाजमें परिच्छिन्न अहंता ममता-रूप आत्मसम्बन्धी भ्रान्त ज्ञानका उन्मेष करके मनुष्योंको परिच्छिन्न भोगासक्तिरूप मृत्युके मुंहमें न डाल सकें, अतः आवश्यकता है प्रभावती सरस्वती-देवीके निर्मल आत्मैकत्व ज्ञानकी। दिव्य-एकत्व ज्ञान का प्रतीक हैं सरस्वती देवी।

दिव्य, निर्मल, आत्मैकत्वज्ञान, दिव्य आत्मबल तथा एकत्वके उन्मेष करनेवाली दिव्य शक्तियोंके पूर्णरूपसे मनुष्य समाजमें विराजमान रहनेसे, उस मनुष्य समाजको सदाके लिए सिद्धि-देवता गणेशजी सफलताकी ओर ले जावेंगे। अर्थात् मनुष्य समाज ऐहिक तथा पारलौकिक सफलताको व्यष्टि तथा समष्टि रूपसे प्राप्त करता है। स्वातन्त्र्य शक्तिमान् पूर्णाहंता-रूप सच्चिदानन्द, शिवत्वको लाभ करके कृतकृत्य होता है और आत्म सम्बन्धी भ्रान्त-ज्ञानको नाश करने वाले शिवरूप आत्मस्वरूपका अनुभव करते हुए प्राणिमात्रका कल्याण करता रहता है। स्वाध्यायसे मनुष्यके ऐहिक तथा पारत्रिक प्रकृत-कल्याणका ज्ञान होता है। इसी लिए—"स्वाध्यायोऽध्येतव्यः"।

अंगूर

[लेखक— श्री सन्तरामजी शर्मा]

गुण—पका हुआ अंगूर रेचक (दस्तावर) शीतल आंखोंको हितकारी, धातु पुष्ट करनेवाला और भारी होता है। यह रक्त-पित्त-दाह-स्वास, उलटी होना, प्यास, जुरी और मूत्रकृच्छ्रका नाश करता है। परन्तु कच्चा अंगूर गुणहीन और भारी होता है। खट्टा अंगूर रक्त पित्त करने वाला होता है। लम्बोतरा अंगूर वीर्य वर्द्धक, भारी, कफ और पित्तको नाश करता है और किशमिशमें भी यही गुण होते हैं। बहुधा गुणी पुरुष अंगूरमें सबसे अधिक यह गुण बताते हैं कि यह अजीर्णको दूर करते हैं। अजीर्ण ही एक ऐसा रोग है कि जो रक्तको नहीं बढ़ने देता। और इसी अजीर्ण से अनेक रोगोंका जन्म होता है।

"रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि।" इस पंक्तिमें भी अजीर्णको समस्त रोगोंका कारण बतलाया है। अंगूरका अधिक सेवन करना बड़ा लाभदायक होता है। अंगूर कई विभागोंमें बांटे जाते हैं—जैसे विनीफरा और अम्रीकन आरी। विनीफरा जातिके अंगूर गर्म भूमिमें लगानेमे बड़े स्वादिष्ट होते हैं। अम्रीकन केवल सर्द भूमिमें ही उत्पन्न किये जाते हैं। इससे आगे फिर इनको कई और जातियों में बांटते हैं जैसे— (१) मदिराके अंगूर जिनको (Wine Grape) कहते हैं (२) सुखानेके अंगूर (Raisin Grape) (३) बिना सुखाये खानेके अंगूर (Table Grape) आदि। मदिराके अंगूर खट्टे होते हैं। दूसरी जातिके अंगूरको सुखाकर मुनक्का दाख बनाते हैं- अब जो नहीं सुखाये जाते हैं उनकी भी कई जातियां होती हैं- एक तो वह जिसके बीचमें मुनक्का दाखकी भांति-दाने नहीं होते हैं उनको वेदाना या (Seedless) अंगूर कहते हैं; दूसरे जिनके बीच में दाने होते हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की जातियां होती हैं, जैसे नर्म छिलका और सख्त छिलका वाली। इनमेंसे केवल एक जातिके विषयमें संक्षेपसे लिखा जाता है।

Hardy American Grope सख्त छिलका वाले अम्रीकन अंगूर इसकी प्रसिद्ध ६ जातियां होती हैं।

Jefferson जैफर सन—फल श्वेत रङ्गका, बहुत मधुर होता है, वर्षमें दो समय फल देता है। Pierce पीयर्स, फल नीलवर्णका बड़ा और गोल होता है—खानेमें स्वादिष्ट, वर्षमें एक समय फल देता है। Concord कंकर्ड—रङ्ग पीयर्सकी भांति परन्तु फल कुछ छोटा और गुच्छा बड़ा होता है। खानेमें बड़ा स्वादिष्ट और रसवाला होता है; वर्षमें एक फसल देता है।

Catawba केटोबा, फल रक्तवर्ण स्वादिष्ट रस से परिपूर्ण होता है। फल मझोला और वर्षके मध्य में एक बार फल देता है। Isabella ऐसेवैला-नीलवर्ण का फल होता है, खानेमें स्वादिष्ट वर्षमें दो बार फल देता है। Niagra नायगरा फल मधुर हरे रङ्गका होता है, परन्तु वर्षमें एक समय फल देता है। अंगूर की बेल दो वर्ष पश्चात् फल देने लगती है। इसको सब ओरसे ६–६ फुटके अन्तरमें लगाना चाहिये। यदि किसी पुरुषको इसके लगानेकी इच्छा हो और अपने पास भूमि न हो तो भी यह बेल लगाई जा सकती है। अपने गृहके दरवाजेके दोनों ओर दो बेलें लगालो और बड़ी होने पर उनको गृहकी छतपर चढ़ा दो, यह एक बड़ा ही सुलभ ढङ्ग है। इसकी बेल भी पटियाला राज्यकी नरसरीसे केवल दो-दो आनेमें मिलती है। अम्रीकन जातिके अंगूर जो अधिकतर ठंडी भूमिमें लगाये जाते हैं पटियाला राज्यकी नर-सरी से ही मिल सकते हैं। क्योंकि महाराजा पटियालाने इस नई जातिकी बेलें अम्रीकासे मंगवाई थीं। अंगूरकी बेलकी प्रतिवर्ष छांगकी जाती है। यह अनुभवी पुरुषका कार्य है। इसके विषय में बहुत कुछ लिखा जासकता है जो फिर कभी प्रेमी पाठकोंके सम्मुख रखनेका प्रयत्न करूंगा।

त्रैमासिक महार्घ-समर्घ (तेजी-मंदी) विचार

[लेखक:—श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी, सम्पादक "श्रीस्वाध्याय"]

इन तीन मासोंमें व्यापारमें अत्यधिक उलट-फेर होगा; अतः व्यापारियोंको बहुत सावधानीसे कार्य करना चाहिए। बाजार-भाव अव्यवस्थित रहनेके कारण जनता और व्यापारीवर्गमें भारी घबराहट रहेगी। इस समय भारतका व्यापार विदेशियोंके हाथमें है और प्रायः सब राष्ट्रोंकी स्थिति कठिनतम होती जा रही है, ऐसी विषम परिस्थितिमें "इदमित्थं" करके निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तथापि व्यापार पर ग्रहोंका जो परिणाम दिखाई देता है वह हम यहां लिख रहे हैं। आशा है व्यापारीवर्ग इससे लाभ उठाएगा।

सौर कार्तिक मासमें (ता० १७ अक्तूबरसे १५ नवम्बर पर्यन्त) वायदेके मार्केटमें महान् उलटफेर होगा। रुईमें भयङ्कर तेजी चमकेगी, सम्भव है रुई ५०) ६०) टके तक तेज हो जावे। चांदी, एरण्डा, शींगदाणा ४) ५), सुवर्ण, बिनौला २॥) ३) और अलसी गेहूं में १।) २) के लगभग तेजी आवेगी। प्रायः प्रत्येक वस्तुका भाव तेजीकी ओर रहेगा। बीच बीचमें कभी कभी कुछ मन्दी भी आवेगी किन्तु जहां बड़ी तेजी का अवसर हो वहां मन्दीका कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। ऐसे समय पर स्वयं मार्केट में उपस्थित रहकर पूर्ण सावधानीसे व्यापार करना अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा। खाण्ड, गुड़, तिल, तैल, लोहा, पीतल, रेशमी तथा ऊनी वस्त्र, घृत और सर्व प्रकारके धान्य प्रायः तेज होंगे। यह कार्तिक मास संसारके लिए सर्वप्रकारसे अनिष्ट सूचक है। रविवारकी दीपमाला भी भावी संकटको सूचित करती है—

कार्तिकस्य त्वमावास्या सूर्यवारेण संयुता।
शनिभौमयुता वाऽपि तदा लोके भयावहा॥

सौर मार्गशीर्ष मासमें (ता० १६ नवम्बरसे १४ दिसम्बर पर्यन्त) रुईके व्यापारियोंको चाहिए कि ३० नवम्बर तक अपना व्यापार सुलट लेवें अर्थात् ता० ३० नवम्बर के अनन्तर रुईमें घटाबढ़ी होकर रुख मन्दीकी ओर चल पड़ेगा। सुवर्ण, चान्दी, अलसी, घृत, खाण्ड, गुड़, सर्वप्रकारके धान्य और लोहा, कांसी, ताम्बा, रंग, रासायनिक पदार्थ एवं मादक द्रव्योंके भावमें बहुत उलटफेर होगा। इन सबका रुख प्रायः तेजीकी ओर ही रहेगा।

सौर पौष मासमें (ता० १५ दिसम्बरसे १३ जनवरी पर्यन्त) रुई धान्य घृतादिका भाव कुछ मन्दा रहेगा। रुई ३०) ४०) टके, सुवर्ण बिनौला, २) २।), चान्दी, एरण्डा, मूंगफली ४) ५) और अलसी गेहूं में १॥) २) के आसन्न मन्दीकी सम्भावना है। बीचमें कुछ थोड़ी तेजीका उछाला भी किसी वस्तुमें आ सकता है पर उससे घबराना नहीं चाहिए। पौष कृष्ण पक्षमें गुड़, खाण्ड, शक्कर, अलसी, मसूर मूंगफली, तिल, तैल और नमकका भाव प्रायः तेज रहेगा।

आगामी अङ्कमें इस विषय पर (तेजी मन्दीके सम्बन्धमें) अनुभवी विद्वानोंके चमत्कारी लेख प्रकाशित होंगे, उनसे व्यापारियोंको पर्याप्त लाभ होगा। इन तीन मासोंकी ग्रह-स्थिति व्यापारमें अनियन्त्रित उलटफेर कारक है, किसी भी वस्तुके भाव सन्तोषजनक व्यवस्थित न रह सकेंगे। इसी कारण इस स्तम्भके हमारे मान्य लेखक श्री पं० आनन्दस्वरूपजी ज्यौतिपालङ्कार और श्री प्रोफेसर बी० सी० महता महोदयने भी इस बार अपना कोई मत (लेख) नहीं भेजा है। आगामी अङ्कसे उनके विचार नियमित रूपेण पाठकों तक पहुंचानेका प्रयत्न किया जाएगा।

शरत्

विश्वमें अनन्त भूखण्ड हैं। उन्हीं भूखण्डोंमें वहां-वहांके वातावरणके अनुकूल प्रत्येक वर्षमें स्थूलमानसे जितने प्रकारके समय आते हैं, उन्हें ऋतु कहते हैं। इसी कारण प्रत्येक ऋतुका सौन्दर्य भी अपना-अपना एक अलग ही प्रभाव, हितकारिता तथा रोचकता साथ ले आता है और अलग-अलग करके जगत्का कल्याण भी करता रहता है। भारतवर्षमें छः ऋतुएं आती हैं। इन छः ऋतुओंमें शरत् ऋतुका एक अलग ही अपना सौन्दर्य है। 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठकोंके हाथ हम 'शरदङ्क' भेंट कर रहे हैं। यों तो इस 'शरत्' से सभी परिचित हैं, किन्तु उन्हींमेंसे एक सौन्दर्यकी झांकी हम आपकी आंखोंके सम्मुख लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। प्रेमी पाठकों! यह झांकी कितनी हृदय-ग्राहिणी है। देखिये वर्षाकाल बीत चुका है, आकाश निर्मल हो रहा है, बाहर जाने-आनेमें किसी प्रकारकी शंका अथवा भय अब नहीं रहा है। इधर उधर भ्रमण करने वालोंको कलंक भी अब लग नहीं सकता। पंकिल मही सूख रही है। सरोवरोंका जल अपनी २ मर्यादामें आ रहा है। कुवलय जल-समाधिको समाप्त कर अपनी अलसाई हुई पलकें खोलकर शरत् प्रभाकी शोभा देख रहे हैं। उछल-कूद मचाने वाली बकमण्डली (तनकी गोरी और मनकी काली) उस अनुपम सुन्दर कुवलयको सता रही है। राजा लोग विजया पूजन कर इसी समय दुष्टोंका दलन करते रहते हैं। इस अनुपम-सुन्दर शरतकी झांकीको महामहिम आचार्य श्रीमान् अमृतवाग्भव जी महाराजने इस प्रकार देखा और उनके मुखसे यह सूक्ति निकल पड़ी। उसीको रसिक पाठकोंके विनोदार्थ हम यहां दे रहे हैं:—

शङ्काऽऽतङ्ककलङ्क-पङ्किलमहीं संशोषयन्ती द्रुतं
संयोगाज्जगदम्बरं घनमलं संशोधयन्ती मनाक्।
उद्रिक्तां बकमण्डलीं कुवलयात् संवारयन्ती जगत्-
कल्याणाय शरत्प्रभा विजयतां सम्पादयन्ती शिवम् ॥

जब भी कोई आदर्श महिला लोक-कल्याणके लिए बाहर भ्रमण करती है तो लोगोंको भी अपने आदर्श पर स्थिर रहनेका उपदेश मिलता है। यह शरत्प्रभा रूपी महायोगिनी अपनी राजराजेश्वरी अखिल ब्रह्माण्ड-नायिका महात्रिपुर-सुन्दरीके आदेशको संसारके हितके लिए सांसारिक जनतामें वितरित करने जाती है। शंका, आतङ्क, कलङ्क आदिसे पंकिल हुई महीको शीघ्रातिशीघ्र सुखाकर विशुद्ध कर देती है। जगतके वस्त्र तथा आकाशको संयोगसे जो घनमल हो गया था उसको सुरुचि और हितकारिताके साथ शीघ्र ही निर्मल कर देती है। कुवलयको त्रस्त करने वाली उद्दाम मनोवृत्तिकी बकमण्डलीका संवारण करती है। इसी कारण जगत्के कल्याणके लिए इस शरत्प्रभाकी विजय भी अत्यन्त हितकर ही है। कारण यह भगवान् शिवके ही कार्यका सम्पादन करती रहती है। रसिक पाठक इसके व्यंग्य अलङ्कार और रसका आस्वादन अपनी अपनी रुचिके अनुसार स्वयं कर सकते हैं। हमने तो इसे सुन्दर सूक्ति समझकर पाठकोंको समर्पित किया है।

—ह० श० त्रिवेदी

स्वास्थ्यके साधन

[लेखक— राजवैद्य श्री पं० सदानन्दजी मिश्र]

अनेक विद्वान् अनेक प्रकारसे दीपावलीका महत्त्व सिद्ध करते हैं;—सबका दृष्टिकोण समान नहीं होता। मेरे निकट दीपावली वह त्यौहार है जिसका स्वास्थ्य और सफ़ाईसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस अवसर पर जो कई त्यौहार साथ २ आते हैं उनमें धन्वन्तरि त्रयोदशी भी एक मुख्य त्योहार है। इसी दिन जगत् के कल्याणके लिए धन्वन्तरि भगवान्ने अवतार लिया था। यह एक बात ही यह दिखलानेके लिए पर्याप्त है कि इस अवसर पर "स्वास्थ्य और उसके साधनों" की चर्चा करना अप्रासङ्गिक न होगा।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक रूपसे भी यह त्योहार स्वास्थ्य साधनसे सम्बन्ध रखता है। संसारमें भारत-वर्ष ही एक ऐसा देश है जहां छहों ऋतुएं समय पर अपना प्रभाव दिखलाती हैं। शरद् ऋतु स्वास्थ्य और बल प्राप्त करनेके लिये है। इस ऋतुमें सेवन की हुई औषधियां शीघ्र फल प्रदायिनी होती हैं, श्रम और व्यायाम भी सुख-साध्य हो जाता है और जठराग्नि प्रचण्ड हो जानेके कारण सेवन की हुई वस्तु सरलता से पच भी जाती है। वर्षाऋतु जितना विकार उत्पन्न कर देती है, उस सबको दूर कर देनेके लिये यह ऋतु प्रकृति देवीने वर्षाके अनन्तर ही रक्खी है। प्रकृति देवीके पुजारी हमारे ऋषि मुनियोंने यह सब सोच विचारकर इसके आरम्भमें ही शक्तिकी आराधनाका विधान रक्खा है। शक्ति पूजाके पश्चात् बल बढ़ानेका उपाय होना ही चाहिये। इसीलिये मैं कहता हूं कि दीपावली स्वास्थ्य और सफ़ाईका त्योहार है। भारत-वासियोंको इस तत्त्वको समझकर प्रकृतिदेवीकी कृपासे लाभ उठाना चाहिये।

शास्त्रोंमें कहा है—'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'। अर्थात् कीचड़में सनकर उसे धोते फिरनेकी अपेक्षा उसे न छूना ही अच्छा है। मैं चाहता हूं कि स्वास्थ्यके सम्बन्धमें इस सिद्धान्तको सब लोग हृदयंगम करलें। असावधानीसे रहकर, मिथ्याहार-विहारसे रोगी होकर औषधियां खाते फिरनेसे यह अच्छा है कि पहलेसे ही रोगोंसे दूर रहा जाय। यह काम बहुत कठिन भी नहीं है। केवल थोड़ेसे प्राकृतिक नियम हैं जिनके अनुसार चला जाय तो रोगका कोई भय नहीं रहता।

स्वास्थ्य कब बिगड़ता है ?

आहार, विहार, व्यायाम, निद्रा और भोग विलास इन विषयोंमें नियमपूर्वक समय पर काम करनेसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है और स्वास्थ्य ठीक रह सकता है, इसकी विपरीततासे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

स्वास्थ्य लक्षण

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

जिसके वात-पित्त-कफ आदि दोष, अग्नि, धातु और मल यह सब समान स्थितिमें हों, जो मनुष्य अपने शरीरके अनुसार सामान्य रूपसे क्रियाएं करता हो और जो देह इन्द्रिय एवं मनसे प्रसन्न हो, उस मनुष्यको स्वस्थ (निरोगी) समझना चाहिये। निरोग रहनेके लिये मनुष्यको यह ज्ञान होना चाहिये कि उसे प्रातःकालसे रात्रि पर्यन्त किस नियमसे रहना चाहिये। स्वस्थ मनुष्यको आयुष्यकी रक्षाके लिये सूर्योदयसे चार घड़ी पहले अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त्तमें उठना चाहिये। उसी समय दुःखकी शान्तिके लिये ईश्वर स्मरण करना चाहिये ताकि देहके साथ ही मन और आत्मा भी प्रसन्न रहे। अनन्तर थोड़ा बासी जल

पीकर मल मूत्रका त्याग करना चाहिये, इसे उषापान कहते हैं। शास्त्र कहते हैं कि भोजनके अन्तमें जो तक्र (छाछ) पीता है और रात्रिके अवसानके समय जल पीता है, उसको वैद्यकी आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रातःकाल न उठनेसे कब्ज होता है। पेटमें गुड़गुड़ाहट, वायुका रुकना, शरीरका भारी होना, पेट फूलना, दर्द होना, मल त्यागनेके स्थानमें पीड़ा होना, डकारों का आना और ग्लानि आदि अनेक बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिये प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले उठकर मल-मूत्र त्याग करना चाहिये।

सूर्योदयसे पहले बासी जल पीकर शौच जाने वालेको अर्श (बवासीर), संग्रहणी, ज्वर, जठर, मेद रोग (चरबी बढ़ना) मूत्र-रोग, रक्त पित्त, कर्ण-रोग, गलरोग, शिररोग, कटि शूल और नेत्र-रोग नहीं सता सकते।

मल-मूत्रसे निवृत्तिके पश्चात् हाथ-पावोंको मिट्टी लगाकर धोना पुष्टि देने वाला है, नेत्रोंको हितकारी है, श्रमको दूर करता है, इससे इन्द्रियां निर्मल होती हैं और मन प्रसन्न रहता है।

दतोन अवश्य करनी चाहिये। धीरे-धीरे दांतोंको रगड़ना मुख रोगको दूर करता है। मुखमें पानी लेकर पानीसे आंखोंमें छींटे देना चाहिये। मुखका पानी बार-बार निकालकर छींटे देना दृष्टि बढ़ाता है और मुखके ऊपर छाईं आदि नहीं पड़ने देता।

इतना करनेके पश्चात् नित्यप्रति खुली वायुमें व्यायाम करना चाहिये। व्यायामसे शरीरमें हलकापन और कार्य करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। शरीर सुन्दर सुडौल और पुष्ट होता है। अग्नि चैतन्य होती है, भोजन भले प्रकार पच जाता है। मस्तिष्कका काम करने वालोंको प्रायः खुली वायुमें घूमना हितकर है। खुली वायुमें घूमने वालोंको मेद नहीं बढ़ता। कब्ज नहीं होती। मन्दाग्नि-शिथिलता आदि दूर रहती हैं। फिर तैलकी मालिश करके स्नान करना सम्पूर्ण अङ्गों को पुष्ट करता है। विशेष करके सिरमें, कानोंमें, पैरों के तलुओंमें तेलकी मालिश अवश्य करनी चाहिए। शिरमें तेल मलनेसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें बल आता है, दृष्टि बलवान् होती है, त्वचा नरम होती है, रोग दूर होते हैं, शिरमें कोमलता आती है, आयुकी वृद्धि होती है, देह पुष्ट होती है और बाल बढ़ते हैं। कानमें तेल डालनेसे बहरापन, ऊंचा सुनाई देना आदि रोग नहीं होते।

पैरोंमें तैल मलनेसे पैरोंका सोना (शून्यता) परिश्रम, स्तम्भ, संकोच, पांव फटना आदिक रोग नहीं होते। निद्रा सुखपूर्वक आजाती और दृष्टि कम नहीं होती है। स्नान करनेसे अग्नि दीपन होता है। शक्ति आयु और ओजकी वृद्धि होती है और उत्साह बढ़ता है। खुजली, मैल, परिश्रम; पसीनेकी दुर्गन्धि, आलस्य, तृषा दाह इत्यादि मिटते हैं; जठराग्नि बलवान् होती है।

भोजन समयपर करिये।

भोजनके सम्बन्धमें भारतवासी बड़ी असावधानी दिखलाते हैं। प्रायः सदैव अनियमित रहते हैं। पर नियत समयपर भोजन न करना बड़ा हानिकर है। इससे अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है। अनियमित भोजन करनेवालोंको अनेक रोग हो जाते हैं। प्रायः भोजनके लिए उनकी रुचि नहीं रहती। भूख लगनी ही बन्द हो जाती है। भोजन करते समय भले प्रकार चबाकर खायें। परमात्माने मुंहमें ३२ दान्त इसलिये दिए हैं कि निगलनेसे पहले ग्रासको ३२ बार चबा लिया जाय। भले प्रकार चबाया हुआ भोजन जल्दी पच जाता है। जैसे-जैसे धीरे २ ग्रास चबाया जाता है, वैसे-वैसे ही भोजनका पचानेवाला रस आमाशयसे धीरे-धीरे निकलकर मुंहमें आता है और भोजनमें मिलकर उसे पतला करता जाता है। ऐसा न करनेमें भोजन पचनेके सम्बन्धमें अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

पानी कब पीना चाहिए ?

भोजनके समय ग्रासको खूब चबानेका जितना

[शेष पृष्ठ ६४ पर देखिये]

पुष्पोंके रंगभेदका प्रश्न

[लेखक— विद्याभूषण श्री पं० मोहन शर्मा विशारद, पूर्व सम्पादक 'मोहिनी']

जगत्-स्रष्टाने सौन्दर्यके भोक्ता मनुष्यके लिए जो अगणित वस्तुएँ उत्पन्न की हैं, उनमें उद्भिज जातीय पुष्प वृक्षोंका अपना एकान्तिक स्थान है। प्रकृतिके अपूर्व शोभासम्भारमें पुष्प वृक्षोंने मानो चार चांद लगा दिए हैं। अरण्यदेश और उद्यानोंमें कलित कुसुमोंके संसारको निरखती हुई प्रकृति माता खिलखिलाती हुई प्रतीयमान होती है। प्रत्येक प्रसून में फूटे हुए नाना रङ्ग और सौरभादिने मिलकर इस सुदृश्य सौन्दर्यमें और भी मोहकता तथा प्रेरणा पैदा कर दी है। जिसे निहारकर मन-मधुकर इकदम मतवाला हो नाच उठता है। जिस प्रकार इन बहुरङ्गे फूलोंकी शोभा, सुगन्धि मानवके पक्षमें आह्लादकारी सिद्ध है उसी प्रकार लोभी द्विरेफों और कीट पतङ्गादि के लिए भी इसकी प्राण-प्रेरकता अपरिहार्य है। पुष्पमें रङ्ग और सुगन्धिका उद्भव होनेसे ही उसकी प्रयोजनीयता और व्यवहार मानव संसारमें उत्तरोत्तर वृद्धि पाते गये। यहां तक कि पुष्पने माङ्गलिक और आह्लादजनक कार्योंमें शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया। प्राचीन कालमें जब २ धरा रानीकी गोदमें पुण्यानुष्ठानोंका प्रवर्त्तन होता तब २ अन्तरिक्षसे देवगण पुष्प वृष्टि करते थे।। पुष्पोंके विविध रङ्गकी शोभा और सुगन्धिमें कोई ऐसा तत्त्व छिपा है कि जिसके प्रभावसे मनुष्यमें असत्‌के प्रति घृणा और सदाचारके प्रति तीव्र अनुराग जागरूक होता है। पूर्वकालमें पुष्पोद्यान आदिकी ममताका भाव इसी सत्य कल्पना का पोषक था। परन्तु, कालक्रमसे मानवकी भावना ज्यों २ सत्यके विमुख होकर असत्यके दुराग्रहसे संयुक्त होती गई त्यों त्यों पुष्प-विन्यास और विलास का यह लक्ष्य और अर्थ भी नहीं रह गया। तथापि पुष्प, अपनी पूर्व परिपाटी पर अचल रहकर वही रङ्ग, रूप और सुगन्धि लुटानेमें निमग्न हैं और मानव भी अपनी मनोवृत्ति भेदके अनुसार उनकी अजस्र लूटमें लग रहा है।

पुष्पोंका रूप, रङ्ग और सुगन्धि—यह तीनों मिलकर मानवका मनहरण करते हैं। रङ्ग और रूप आंखोंके अजिरमें प्रभाव डालकर, उन्हें मदमाती बना देते हैं और सुगन्धि घ्राणेन्द्रिय द्वारसे प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्डमें घर कर जाती है। इस तरह पुष्प संसारका वातावरण रूप रङ्ग मधु और सुगन्धिसे सना हुआ होनेके कारण, मनुष्य तथा भ्रमर, कीट पतङ्गादि जीवोंके पक्षमें सदैव ही चित्ताकर्षक और लोभनीय होता है। मनुष्य इनसे रूप, रङ्ग और सुवासका आनन्द लेता है और भ्रमर, कीट पतङ्गादि इतर जीव इनसे मधु और गन्धका रसास्वादन करते हैं। यहां हम पुष्पोंके रङ्गकी समस्या पर ही विचार करेंगे। पुष्प एक रङ्गे, दोरङ्गे और बहु रङ्गे सभी जातिके पाये जाते हैं। इन समस्त प्रकारके कुसुमोंमें यह जो वर्ण वैचित्र्य देखा जाता है, इसका यथार्थमें क्या रहस्य है? क्या हमारे नेत्ररञ्जन और मनोविनोदके निमित्त ही पुष्पोंमें इस अनुपम शोभा सम्भार और विचित्र रङ्ग सम्पत्तिकी सृष्टि हुई है? ये प्रश्न इतने सुस्पष्ट और आवश्यक हैं कि इनसे किसीको भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। विधाता की सृष्टिमें जितने पदार्थ पाये जाते हैं उन सबोंका अपना अलग अलग विज्ञान है। अतः इस जिज्ञासा का भी स्वस्थ उत्तर गवेषणा और खोजसे मिलता है। कवि-कोविदोंने इसका रहस्योद्घाटन अपनी वाणीसे चाहे जैसा भी किया हो पर उद्भिद तत्त्वज्ञोंके मतानुसार इसका कुछ दूसरा ही कारण है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। पुष्पोंकी यह विशेषताएँ सत्य और सदाचारके लिए प्रेरक कारण सिद्ध हैं उसी भांति उद्भिद तत्त्वज्ञोंका मत है कि प्रसूनोंकी वर्ण-

च्छटा और विचित्र रङ्गोंका समावेश, पराग और उसके प्रेमीको एक दूसरेके मिलानेके अर्थ ही हुआ है। मिलन और प्रेम जबतक निर्दोष परिधिमें रहते हैं तबतक उनमें सत्य और सदाचारकी ही बढ़ोतरी होती है। फिर पुष्पोंमें तो यह तत्त्व पूर्णतः विद्यमान है कि उनके देखने, सूंघने और बीचमें रहनेसे हृदय और मस्तिष्कको नई स्फूर्त्ति प्राप्त होकर मनुष्यका मन एक वार ही निर्मल हो उठता है। कवियोंने पुष्पोंके परागकी प्रेम-पराग-प्रदीप्त किशोरियोंसे तुलना की है, पर वह श्रृङ्गारिक काव्यकी दृष्टिसे लागू होने पर भी तत्त्व रूपसे निर्मूल सी भासित होती है।

कीट पतङ्गादि जीव, पुष्पोंके प्रति केवल उनके रंगसे ही आकृष्ट होते हैं सो नहीं, वरन् गन्ध और मधु भी उन्हें निरन्तर प्रलुब्ध करते रहते हैं। तो भी कहना पड़ेगा कि दूरसे आकर्षित करनेमें गन्ध और वर्ण ही प्रधान कारण हैं। यह ठीक है कि गन्ध और वर्णमेंसे किसका आकर्षण और सजीवता अधिक है, यह अभी सम्पूर्ण रूपसे स्थिर नहीं किया जा सकता। इस विषयकी हम यथासम्भव आगे चलकर आलोचना करेंगे।

प्रथमतः यह जानना आवश्यक है कि पुष्प समूह में इन विविध रंगोंका कैसे और कहांसे समावेश होता है? पौधे और वृक्ष भूमिके आभ्यन्तरिक भागोंसे मिट्टी और रसके साथ जिन समस्त धातव पदार्थोंको ग्रहण करते हैं, उन सबोंमें ही रञ्जन पदार्थोंके कण विद्यमान रहते हैं। यही कण सूर्या-लोकसे सम्बन्धित रसायनिक प्रक्रियासे नाना रंगों में प्रतिफलित होकर पुष्पोंको बहुरंगा रूप देते हैं। मुकुल-दलमें व्याप्त आभा और नाना रंग, इन्हीं कणोंके संयोगका अभ्रान्त प्रमाण और कारण है। वैसे पुष्पोंमें यह जो विविध उज्वल रंगोंका विकास हुआ है वह किस प्रकार होता है, इसे सूक्ष्म रीति से बतलाना सर्वथा कठिन है। उद्भिद् विशेषज्ञ इस सम्बन्धमें अभी तक गवेषणा और खोज ही कर रहे हैं। पृथ्वीमें श्वेत-वर्णके पुष्प अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। श्वेतके बाद पीले और उसके बाद लाल, नीले, बैंगनी, हरे, नारङ्गी रंगके, नील पीत मिश्रित रंगके और कृष्ण-रंगके पुष्पोंका संख्या क्रम देखनेमें आता है। कृष्ण-रंगके पुष्प एक प्रकारसे न्यून संख्यामें देखनेको मिलते हैं, ऐसा कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। प्रति सहस्त्र पुष्प-वृक्षोंमें अनुमानित मध्यममानसे २८४ श्वेत पुष्पके, २२७ हरिद्रा वर्णके, २२० लोहित, १४१ नील, ७३ बैंगनी, ३७ हरे, १२ नारङ्गी रंग, ४ नील पीत मिश्रित रंग और मात्र २ कृष्ण वर्ण पुष्पके वृक्ष पाये जाते हैं। इससे सिद्ध है कि श्वेत-पुष्पके वृक्षों की संख्या सबसे अधिक और कृष्ण-वर्णके पुष्प वृक्षोंकी संख्या सबसे ही न्यून है।

इन समग्र पुष्पोंमेंसे श्वेत पुष्पोंमें अधिक सुगन्धि होती है। श्वेत कुसुम समूहमेंसे अधिकांश ही ऐसे हैं जो रात्रिकालमें विकसित होते हैं। खोज और अनुसन्धानसे जाना गया है कि अधिक मनोज्ञ और रंगीन पुष्प प्रायः गन्धहीन होते हैं। कुछ श्वेत कुसुमोंके सम्बन्धमें यह एक विचित्रता है कि जो रात्रिकालमें प्रस्फुटित होते हैं, वे प्रभातका संस्पर्श होने पर सहसा सौरभहीन हो उठते हैं और सूर्यालोक का स्पर्श होते ही उनके परिमल भण्डार पर ताला पड़ जाता है। यदि इन्हें प्रत्यूष कालमें ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह म्लान मुख जैसे दिखाई देंगे और ज्योंही रात्रिका आगमन हुआ कि वे पुनः विकसित और प्रफुल्लित होकर अपने सौरभ द्वारा लुब्ध भौंरों को आमन्त्रित करने लगते हैं। परागवाही कुसुमोंके रंगके सम्बन्धमें कीट पतङ्गादिके बीच एक प्रकार का पक्षपातित्व भी पाया जाता है। मधु-मक्षिका, प्रजापति, दूसरी २ मक्खियां और कीड़े पतङ्गे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भिन्न २ रंगोंको पसन्द करते हैं। जैसे भ्रमर और मधुमक्खीको गहरा नीला और नीलाभ बैंगनी रंग ही विशेषतः पसन्द है। इन रंगोंके फूलों पर द्विरेफकी गुनगुनाहट और मधुमक्खीकी भनभनाहट किसी भी पुष्पोद्यानमें विहार करते हुए कोई भी सहजमें देख सुन सकता है। भौंरे रक्त वर्णके पुष्प पर मंडराते हुये कदाचित्

ही दिखाई देंगे। इससे प्रगट है कि लाल रंगमें उसकी थोड़ी भी अनुरक्ति नहीं है। एक ही उद्यान में लाल और नीले फूल खिलते हैं पर भ्रमरावली लाल फूलोंको त्यागकर नीले और बैंगनी रंगके पुष्पों पर ही भांवर परिक्रमा भरती हुई पायी जाती है। अलिवृन्दको रक्त वर्णके पुष्पोंसे ऐसी चिढ़ क्यों है यह कुछ कहा नहीं जा सकता। रंगोंके इस चुनावके सम्बन्धमें अलि और मधुमक्खीमें यह रुचि विचित्रता पायी जाती है कि मधुमक्खी नीले और बैंगनी फूलों के अतिरिक्त हरिद्रा वर्णके फूलोंको भी मान्य देती है। पर हरित-वर्णके पुष्पोंके प्रति उसमें एकान्त रूपसे उदासीन भाव रहता है।

इधर प्रजापतिको देखिये तो उसे लाल रङ्गके कुसुमोंसे जितनी ममता है, उतनी दूसरे रङ्गके पुष्पों से नहीं है। किसी भी पुष्पोद्यानमें क्षणकाल पर्यन्त लक्ष्य करके देखें तो भ्रमर प्रजापति और मधुमक्खि-योंमें अपने निर्वाचित रंगके पुष्पोंके लिये होड़सी लग रही जान पड़ती है। प्रजापति केवल रक्तवर्णके पुष्पोंपर लुण्ठित हुआ है तो भ्रमर और मधुमक्खियां नील और बैंगनी रंगके पुष्पोंमेंसे परिमल बटोरनेमें सर्वस्व निछावर करनेको लगी हैं। प्रजापति बैंगनी रङ्गका नैसर्गिक शत्रु है और वह इस रंगके पुष्पोंको कभी स्पर्श तक नहीं करता। कई रात्रिचर कीट, पतङ्ग, श्वेत पुष्पोंके अनुरागी होते हैं। ज्ञात होता है कि रात्रिकालमें श्वेत और पीले फूलोंके अतिरिक्त अन्य रंगोंके पुष्प दिखाई न देनेसे ही विविध जातीय श्वेत कुसुमोंका इतना विकास और विस्तार हुआ है। श्वेत पुष्पोंमें तीव्र गन्ध होनेसे कीट, पतङ्गादि जीवसमूह दूर २ से खिंचकर चले आते हैं। इन समस्त श्वेत फूलोंके शुभ्रदल और सौ-रभादिमें महान् आकर्षण और मोहिनी-माया लिपटी हुई जान पड़ती है। तभी कीट, पतङ्गादि कुसुमचारी जीव रात्रिमें दूर २ से आकर, इनका डटकर रसा-स्वादन करते हैं।

पिपीलिका प्रभृति पराग भोजी कीड़ोंको प्रायः हरिद्रावर्णके कुसुमोंमे अधिक ममत्व है और तभी वे परागका रङ्ग पीला होनेसे पीतवर्ण जातीय कुसुमोंपर प्रायः संघबद्ध होकर विचरण करते रहते हैं। छोटी छोटी अन्य मक्खियोंमें भी रंगके चुनाव और पसन्दगीका भाव स्पष्ट रूपसे व्यक्त होता है। वे प्रायः अप्रीतिकर-गन्ध-विशिष्ट पदार्थों और कुसुमोंका अनुसन्धान करती रहती हैं। घृणित वस्तुओंकी गन्धके मटमैले पुष्पोंमें हम उन्हें गमनागमन करते हुये देखते हैं। रंग भेदके अतिरिक्त पुष्पोंमें जो आ-कार भेद पाया जाता है वह प्राणीके वास भेदके अनुसार ही आजके इस घटाव बढ़ावको प्राप्त हुआ है। ऋतुभेद और स्थानभेदसे भी कुसुमोंकी श्रेणियों में विशेष २ रंगोंका प्रभाव परिलक्षित होता है। कहते हैं कि बाल्टिकसागरके समीपवर्त्ती प्रदेशोंके कुसुमों में भिन्न २ ऋतुओंमें भिन्न २ वर्णों और रंगोंका विकास होता देखा गया है। इन प्रदेशोंमें एप्रिल और मईके महीनोंमें सफेद फूल, मई और अक्टूबरमें हरिद्रा फूल और सितम्बरमें लाल फूलमें यह प्रभाव एक बार ही प्रगट होता हुआ देखनेमें आता है।

यह कहना अयथार्थ नहीं होगा कि अलिवृन्द द्वारा पुष्पका परिमल लुण्ठित होनेपर पुष्पका रङ्ग-रूप म्लान हो उठता है और उसकी प्रफुल्लता भी नष्ट होजाती है। अनेक स्थलोंपर कुसुमोंमें यौनि सम्मिलनके बाद खासकर लाल रंगके पुष्पोंको क्रम २ से नीलाभ होते हुए देखा गया है। इस रंगकी मली-नताका और भी कोई दूसरा कारण है जो ठीक ठीक समझमें नहीं आता। मधुमक्खियां इन पुष्पोंको ज्योंही निष्प्रभ देखती हैं त्योंही इन्हें त्यागकर दूसरे ताजे, सुवासित फूलों का अन्वेषण करने लगती हैं। कीट, पतङ्गादिके स्वच्छन्द दर्शनकी सुविधाके लिये पुष्पोंके अंश विशेषका रंग कभी उज्वल और कभी मलीन होता रहता है। पतङ्ग उड्डीयमान अवस्थामें इन पुष्पोंके जिन अंशोंको देखते हैं, वे सब अंश रंगमें खूब गहरे और उज्वल हो उठते हैं। और जिन अंशोंको यह नहीं देखते उनके रंगकी गहराईका

होना उतना आवश्यक नहीं है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसीलिये अधिकांश फूलोंके बाहिरी भागका रंग प्रायः निष्प्रभ और निस्तेज जैसा बना रहता है। इन सब कारणोंसे यही ज्ञात होता है कि पुष्पोंमें रंगभेदकी जो माया काम कर रही है उसमें प्रकृतिका हाथ होनेके साथ २ कीट, पतङ्गादि जीवोंकी भी रुचि लालसा अपना खास प्रभाव रखती है। दूसरे शब्दोंमें कुसुम-समूहकी इस शोभा-सम्पत्तिके विस्तारका मुख्य उद्देश अलिवृन्दको प्रलुब्ध करना और गौण उद्देश काननकी शोभा वृद्धि द्वारा मनुष्यमात्रका मनोरञ्जन करना है। ईश्वर करें, कि मनुष्य पुष्पोंकी निर्मलता और अपूर्व सौन्दर्यमें उसके सत्य स्वरूपकी झांकी करनेके अभ्यासी बनें और सत्य तथा सदाचारको ही अपने मनोरंजन और आत्म-तृप्तिका साधन जानने लग जाएं।

मकर संक्रान्ति

संवत् १९९९ शकः १८६४ पौष शु० ६ गुरुवार ता० १४ जनवरी १९४३ ई० को श्रीसूर्योदयात् इष्ट घट्यादि ७।८ पर नवमी तिथि, गुरुवार; अश्विनी नक्षत्र, सिद्धियोग, बालवकरण और कुम्भलग्नमें सूर्य मकरराशिमें प्रविष्ट होंगे। यहींसे उत्तरायण और शिशिर ऋतु (निरयनमानसे) तथा देवताओंका दिन और दैत्योंकी रात्रि आरम्भ होगी। इस संक्रान्तिका पुण्यकाल घ. ७।८ उपरान्त अर्थात् प्रचलित स्टेण्डर्ड टाईम घंटा ११ मिनट १६ से आरम्भ होकर सारा दिन रहेगा। मकर संक्रान्ति और षट्तिला एकादशी को तिल मिश्रित जलसे स्नान, शरीरमें तिलोंका उद्धर्त्तन, तिल हवन, तिल मिश्रित जलपान, तिल भक्षण और तिल दान करनेका विशेष महात्म्य है।

तिलस्नायी तिलोद्वर्त्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक् तिलदाता च षट्तिला पाप नाशिनी॥

इस मकर संक्रान्तिका विस्तृत फल हम आगामी अङ्क (हेमान्ताङ्क) में देंगे।

—सम्पादक

[पृष्ठ ६० का शेष]

ध्यान रखना आवश्यक है, उतनी ही पानी पीनेके सम्बन्धमें सावधानी रखनेकी भी आवश्यकता है। प्यासमें भोजन करनेसे गुल्म हो जाता है। भूखमें जल पीनेसे जलोदर और जठर रोग हो जाते हैं। भोजन करते समय बार-बार पानी पीनेसे भोजनको पचानेवाला रस पतला हो जाता है जिससे अन्न अङ्ग नहीं लगता। हां, बीचमें थोड़ा जल पीनेसे दीपन होता है। भोजनके पश्चात् तुरन्त जल पीना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेसे बहुमूत्र रोग होनेका भय है।

दांतोंकी सफ़ाई

भोजनोपरान्त दांतोंको भली प्रकार साफ करें; इससे दांत और मसूढ़ोंके रोग नहीं होते, आमाशय और दांतोंका सम्बन्ध भी बहुत घनिष्ठ है। भोजनोपरान्त दांत साफ न करनेसे पायरिया नामक रोग होजाता है, जिससे एक प्रकारका पीव दांतोंसे रिसने लगता है। यह पीव आमाशयके लिये बहुत ही हानिप्रद है। दोपहरको भोजन करनेके उपरान्त थोड़ा विश्राम करना और सायंकालके भोजनोपरान्त थोड़ा टहलना अमित लाभकारी है।

भोजनके पश्चात् बैठे रहनेसे आलस्य तन्द्रा और मेदकी वृद्धि होती है। शयन करनेसे शरीर पुष्ट होता है। भोजन करके दौड़नेसे रोग हो जाते हैं। धीरे २ चलनेसे आयुकी वृद्धि होती है। भोजन करनेके पश्चात् प्रथम उत्तान लेटकर आठ श्वास लेने चाहियें; फिर बाईं करवट लेटकर १६ श्वास लेना चाहिए। इसके अनन्तर जैसी इच्छा हो सो सकते हैं। बांई करवट सोनेसे अन्न भली प्रकार पच जाता है। इस से विपरीत करनेसे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

ये स्वास्थ्यरक्षाके साधारण सिद्धान्त हमने 'श्रीस्वाध्याय' के पाठकोंको बता दिये हैं। यदि इनके अनुसार अमल करेंगे तो माना जायगा कि आप इस दशामें औषधियोंका सेवन किए बिना भी स्वास्थ्य और सुख प्राप्त कर सकेंगे।

शूद्रक-अग्निमित्र-इन्द्राणिगुप्त-विक्रमादित्य प्रथम

(लेखकः—श्री प्रो० भगवद्दत्त जी बी० ए०)

[इस लेखके लेखक पंजाब प्रान्तके संस्कृत साहित्यके एक प्रसिद्ध विद्वान् वा पुरातत्त्वान्वेषक हैं। आपकी ख्याति भारतके प्राच्यविद्याविशारद तथा प्रतीच्यविद्याविशारदोंमें ही नहीं, अपितु भारतसे बाहर यूरोप और अमेरिकाकी विद्वन्मण्डलीमें भी पर्याप्त मात्रामें है। यह लेख उनके गम्भीर अध्ययन तथा अन्वेषणका परिणाम समझना चाहिये। हमें महान् हर्ष है कि आपने अपने इस मौलिक लेखको प्रकाशित करनेका उत्तम स्थान 'श्रीस्वाध्याय' को समझा है। 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठक तथा संचालकोंको इसका गौरव होना चाहिए। —सम्पादक]

कीथ आदि पाश्चात्य लेखकों की भूल—अध्यापक आर्थर बैरिडेल कीथ का मत है कि शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं था। उसकी सत्ता मनघड़न्त ही है।[1] अमेरिका अन्तर्गत संयुक्त-राष्ट्र-वासी मृच्छकटिकके नूतन अनुवादक रेविलो पेण्डलेटन आलिवरकी भी ऐसी ही सम्मति है।[2]

इस भूल का खण्डन—इन लेखकोंका मत हास्यास्पद है। मृच्छकटिक प्रकरण और पद्मप्राभृतक भाण इस समयभी उपलब्ध हैं। गत अनेक शताब्दियोंके भारतीय ग्रंथकार इन दोनों ग्रन्थोंको शूद्रक-कृतही मानते आए हैं। उनके लेखोंका सार निम्नलिखित है—

१. सौराष्ट्रिक गुणचन्द्र रामचन्द्रने अपने नाट्यदर्पण में लिखा है—

श्रीशूद्रकविरचितायां मृच्छकटिकायां— ।[3]

२ इसी प्रकार वंगीय श्रीधरदास शक ११२७ में रचे गए अपने सदुक्तिकर्णामृतमें मृच्छकटिकके ४।१५।। श्लोकको शूद्रकके नामसे ही उद्धृत करता है।[4]

३. इन ग्रन्थोंसे बहुत पूर्व रची गई आचार्य दण्डीकी अवन्तिसुन्दरी कथाके आरम्भमें पुरातन कवियोंकी स्तुति गाई गई है। उस स्तुतिका अधोलिखित श्लोक देखने योग्य है—

शूद्रकेणासकृज्जित्वा स्वच्छया खड्गधारया।
जगद् भूयोऽभ्यवष्टब्धं वाचा स्वचरितार्थया ॥

---

१. Cudraka was a merely legendry person. The Sanskrit Drama, Oxford, 1924. पृष्ठ १२६।

२. मृच्छकटिक is a literary forgery, and the name of the selfeffacing poet who composed it seems lost beyond all recall. पृ० १७. Renouncing, therefore, all hope of ascertaining the name of the poet who masquaraded as Sudraka........, पृ० १६. The little Clay Cart, by Revilo Pandleton Oliver. The University of Illinois Press. Urbana, 1938.

३. बड़ोदा संस्करण, पृ० ४८।

४. सदुक्तिकर्णामृत ११७।५।।

इस श्लोकका स्पष्ट अर्थ यही है कि विजेता शूद्रक ने अपना चरित वर्णन करने वाली रचनाओं से जगत्को दोबारा चकित किया।

४. महाराजाधिराज विक्रमांक समुद्रगुप्तने स्वरचित कृष्णचरितके कविकीर्तन नामक कथा-प्रस्तावना प्रकरणमें लिखा है—

भूयः स मृच्छकटिकं नवांकं नाटकं व्यधात्।
व्यधात्तस्मिन् स्वचरितं विद्यानयबलोर्जितम् ॥१२॥
तदायकजयं नाम्ना ख्यातिं विद्वत्स्वविन्दत।

अर्थात—शूद्रक ने आत्मचरित वर्णन करने वाला मृच्छकटिक नाटक बनाया।

इसी प्रकार पद्मप्राभृतकके सम्बन्धमें भी लिखा जा सकता है। अब विचारने का स्थान है कि ये विद्वान् मूर्ख नहीं थे कि एक कल्पित व्यक्तिको इन ग्रन्थोंका रचयिता मान लेते। आर्य विद्वानोंका लेख अपनी परम्पराके अनुकूल और प्रमाण-सिद्ध है। अतः कीथ आदिका मत निस्सार और त्याज्य है।

कीथ और आलिवरके विपरीत योरुपान्तर्गत नारवे प्रदेशके अध्यापक स्टेन कोनो शूद्रक को ऐतिहासिक तो मानते हैं, पर आभीर-राज शिवदत्तसे उसका ऐक्य सिद्ध करनेका यत्न करते हैं।[1] हम आगे लिखेंगे कि शूद्रक ब्राह्मण था, अतः स्टेन कोनोका मत भी पूरा ठीक नहीं है।

शूद्रक के विभिन्न नाम

१. अवन्तिसुन्दरी कथासार के अनुसार शूद्रकका जन्म-नाम इन्द्राणिगुप्त था। वह अश्मक जनपद निवासी था।[2] यही इन्द्राणिगुप्त शूद्रक प्रसिद्ध सम्राट् शूद्रक हुआ। इसी शूद्रकके कृत्यों पर विनयवती शूद्रकम कथा बनी। ध्यान रहे विनयवती का उल्लेख अवन्तिसुन्दरी कथासारके प्रस्तुत प्रसंगमें भी मिलता है।

२. शूद्रक का एक नाम अग्निमित्र भी था। नामलिङ्गानुशासन उपनाम अमरकोशका टीकाकार क्षीरस्वामी अपनी टीकामें किसी पुरातन कोशके कुछ श्लोक उद्धृत करता है। उनमेंसे एक श्लोक नीचे लिखा जाता है —

द्रौपदी, विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः।
शूद्रकस्त्वग्निमित्राख्यो हालः स्यात् सालवाहनः ॥[3]

इस श्लोकके अनुसार शूद्रकका नाम ही अग्निमित्र था। भारतीय इतिहासका प्रथम अग्निमित्र शुङ्ग कुलका था। शूद्रक उससे भिन्न और दूसरा अग्निमित्र हुआ है। शूद्रक-अग्निमित्र एक विख्यात कवि था। अतः गोडवहो नामक प्राकृत काव्यमें यही दूसरा अग्निमित्र कवि जलणमित्त नाम से स्मरण किया गया प्रतीत होता है।[4]

---

१. Aufsatzezur kultur-und Sprachgeschichte Ernst Kuhn gewindmet. Breslau, 1916. पृ० १०७........।

२. आयुषोऽन्ते स एवासावश्मकेषु द्विजोत्तमः।
इन्द्राणिगुप्त इत्यासीद्यं प्राहुः शूद्रकं बुधाः॥ अवन्तिसुन्दरीकथासार ४। १७५॥

३. त्रिवन्द्रम संस्करण २।८।१॥

४. भासम्मि जलणमित्ते कुन्तीदेवे······· ॥८००॥

शूद्रकका राजकवि श्री कालिदास अग्निमित्र प्रथम सम्बन्धी मालविकाग्निमित्र नाटक लिख कर उसके भरत-वाक्य— संपद्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे द्वारा अपने आश्रयदाता शूद्रक-अग्निमित्रका भी संकेत करता है।

विक्रमाङ्क समुद्रगुप्त रचित कृष्णचरित में शूद्रकके पुत्रका नाम देवमित्र लिखा है।[1] अतः पिता शूद्रक का अग्निमित्र नाम धारण करना सत्य हो सकता है। अपने इसी नाम के अनुकरण पर उसने पुत्र का नाम भी मित्रान्त रखा होगा।

३. शूद्रकका एक और नाम विक्रम अथवा विक्रमादित्य भी था। समुद्रगुप्त ने स्पष्ट लिखा है—

वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम् ॥११॥

अर्थात् शूद्रकने शकों को जीतकर अपना वैक्रम संवत् चलाया। यह वैक्रम अर्थात् विक्रम का संवत् प्रचलित विक्रम संवत् से सर्वथा भिन्न था। इसका स्पष्टीकरण संवत् शीर्षक के नीचे किया जायगा।

शूद्रक और विक्रम की समता के भाव से ही शार्ङ्गधर ने अपनी पद्धतिमें मृच्छकटिकके एक श्लोक को विक्रमादित्य और मेण्ठ का कहा है। हम आगे लिखेंगे कि कवि मेण्ठ महाराज शूद्रक का अनुजीवी था। अतः मेण्ठ और शूद्रककी सहरचना असम्भव नहीं। शार्ङ्गधर अथवा उसके पूर्ववर्ती लेखक शूद्रक का विक्रमादित्य नाम धारण करना जानते थे। फलतः शूद्रक-मेण्ठ न लिख कर उन्होंने विक्रमादित्य-मेण्ठ लिख दिया। मृच्छकटिक के प्रस्तुत श्लोक में मेण्ठ का भी भाग रहा होगा।

४. शूद्रक का एक अन्य नाम विषमशील भी रहा होगा। कथासरित् सागर का विषमशील लम्बक इसी शूद्रक-विक्रमादित्य के सम्बन्ध में है। हां, वहां की एक बात अवश्य खटकती है। शूद्रक-विक्रम का पिता राजा नहीं था। इसके विपरीत कथासरित् सागर में विक्रमादित्य का पिता उज्जयिनीका राजा महेंद्रादित्य लिखा गया है।[2] हम समझते हैं कि यहां पर सोमदेव अथवा उसके पूर्वजोंने वैसी ही भूल की हैं, जैसी कल्हण ने मातृगुप्त के सम्बन्ध में की। सोमदेव आदि ने शूद्रक-विक्रम की कथा उसके उत्तरवर्ती विक्रम की कथा से थोड़ी सी मिला दी है। मूल बृहत्कथा में यह सम्मिश्रण नहीं होगा। बृहत्कथा सुबन्धु-कृत वासवदत्ता में उद्धृत की गई है।[3] यह वासवदत्ता महेन्द्रादित्य के पुत्र स्कन्द गुप्त-विक्रमसे पहले रची गई थी। इस का लेखक सुबन्धु साहसाङ्क-विक्रम के पुरोहित वररुचि का भागिनेय था।[4]

कथासरित् सागर की इस भ्रान्ति के कारण ही मुम्बईके अध्यापक शाम्बेवनकरने इस विषमशील-विक्रम का संबंध वर्तमान-संवत् प्रवर्तक विक्रम से जोड़ा है।[5] कथासरित् सागरकी यह थोड़ीसी भ्रान्ति हमारी अगली पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगी।

हमारे अनुमान का समर्थन कथासरित् सागर में ही मिल जाता है। शूद्रक-विक्रम का एक मित्र धूर्तराज मूलदेव था।[6] वह पहले पाटलिपुत्र का वासी था।[7] फिर वह उज्जयिनी में रहने लगा। वही धूर्त मूलदेव कथासरित् सागर के इस विषमशील लम्बक में महाराज विक्रम से एक स्वानुभूत कथा कहता है।[8] इस

१. उपवेश्य निजं पुत्रं देवमित्रं निजासने ॥२४॥
२. १८।१।११॥
३.
४. फिट्ज़ एडवर्ड हाल के एक हस्तलेख के अन्त में ऐसा लेख था।
५.
६. देखो आगे, शूद्रक के समकालीन।
७. मूलदेवः सकलकलाकलापज्ञः·······देवदत्ता च गाणिक्यमाणिक्यं तत्रैव प्रागवसन्। विविधतीर्थकल्प, पृ० ६६।
८. १८।५।१२६–२३६ ॥

कथा में पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध गणिका देवदत्ता भी वर्णित है।[1] मूलदेव सम्बन्धी कई अन्य ग्रन्थों में भी इसी देवदत्ता का उल्लेख मिलता है।[2] यह देवदत्ता कामसूत्र की जयमंगला टीका में भी स्मरण की गई है।[3] मूलदेव श्रावित कथा के अथवा कथासरित् सागर के ही अन्त में लिखा है—

इत्येतां मूलदेवस्य निशम्य वदनात् कथाम्।
विक्रमादित्यनृपतिस्तुतोष सह मन्त्रिभिः॥[4]

अतः बहुत संभव प्रतीत होता है कि विषमशील शूद्रक-विक्रम ही था।

इस विचारकी पुष्टि श्री शूद्रक-रचित मृच्छकटिक प्रकरणसे भी होती है। महाराजाधिराज समुद्रगुप्तके कृष्णचरितके अनुसार इस प्रकरणमें शूद्रकका ही नामान्तर आर्यक है। यह आर्यक एक विचित्र प्रकारसे अपने नामका परिचय दे रहा है—

भवेद्गोष्ठीयानं न च विषमशीलैरधिगतं।[5]

अर्थात्—शूद्रक स्वयं अपने विषम-शील का चिन्तन करता है।

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र (सन १५३४-१५८६) रचित गुरुरत्नमालिका नामक शाङ्कर सम्प्रदायके एक ग्रन्थमें निम्नलिखित श्लोक मिलता है—

अपि यः श्रित-मातृगुप्त-विद्या-धिप-सेतु-प्रवरादि सूरिहृद्यम्।
सुषमामथिताहिमाद्रिभूमौ विषमादित्य-नुतो ऽवतात् स चामुम् ॥५०॥

इस पर सन् १७२० में टीका करने वाला आत्मबोध लिखता है—

विषमादित्येन हर्षापरपर्यायेण तदभिधान-उज्जयिनीश्वरेण शकारिणा विक्रमादित्येन—।

अब यदि यह ग्रन्थ और उसकी 'आत्मबोधकृत' टीका गत सौ वर्षमें किसी शाङ्कर मतानुयायीने कल्पित नहीं की, तो कथासरित् सागरमें आए हुए विषमशील नामकी पुष्टि विषमादित्य[6] नामसे होती है।

५. उपर्युक्त पंक्तियोंसे ज्ञात होता है कि इस शकारि विक्रमका एक नाम हर्ष भी था। यही बात एक प्रमाणान्तरसे भी स्थिर होती है। सम्राट् शूद्रकका सभ्य और प्रसिद्ध कवि रामिल था। उसके रचे हुए मणिप्रभा नाटकका एक लम्बा उद्धरण आत्म- बोधकी पूर्वोक्त टीकामें उपलब्ध होता है। यदि यह उद्धरण भी कल्पित नहीं, तो इसमें आया हुआ निम्नलिखित श्लोक बड़ा उपयोगी है—

आचार्येशद्विजन्माथ्र्यतिथिषु विनतो वैनतेयश्शकाहेः
कश्मीरानेव काव्यं किमपि कवयितुर्दत्तवानप्रमत्तम्॥
रत्नादत्तप्रहर्षप्रकृति कृतिशताध्मातहर्षः स हर्षः
कर्णाभ्यर्णावतीर्णः कथमथतदनो विक्रमी विक्रमार्कः॥

इस श्लोक में हर्ष और विक्रमी विक्रमार्क एक ही व्यक्ति कहे गये हैं।

---

१. १८।२।१७६॥ २. पुष्पदूषितक, पद्मप्राभृतक। ३. १।३।२१॥

४. १८।२।२३६॥ ५. ६।४॥

६ 'किसी विषमादित्य कविकी सूक्तियां सूक्तिग्रन्थोंमें मिलती हैं। कृष्णमाचार्यका संस्कृत सा० का इतिहास, पृ० ४०४।

सागरनन्दीकृत नाटक लक्षणरत्नकोशके अन्त में लिखा है —

श्रीहर्षविक्रम-नराधिप-मातृगुप्त-गर्गाश्मकुट्ट-नखकुट्टक-बादराणाम् ।
एषां मतेन भरतस्य मतं विगाह्य घुष्टं मया समनुगच्छत रत्नकोषम् ॥

अर्थात् श्री हर्ष-विक्रम नराधिप तथा मातृगुप्त आदि भरत नाट्य शास्त्रके टीकाकार अथवा सहायक ग्रन्थकार थे। यह सुप्रसिद्ध ही है कि श्रीहर्षने भरत नाट्य शास्त्र पर एक बृहत् वार्तिक लिखा था। मातृगुप्तने भी भरत पर कोई ग्रन्थ लिखा था। दोनों ग्रन्थोंके उद्धरण पर्याप्त संख्यामें मिलते हैं। यही हर्ष-विक्रम था कि जिसने मातृगुप्तको काश्मीर राज्य प्रदान किया था।

इस सम्बन्धमें कल्हणकी एक भूल भी ध्यान देने योग्य है। उसकी राजतरङ्गिणीके निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् । विक्रमादित्य-भूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥५॥
शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः । अन्यैरत्रान्यथालेखि विसंवादि कदर्थितम् ॥६॥
इदं स्वभेदविधुरं हर्षादीनां धराभुजाम् । कञ्चित् कालमभूद्भोज्यं ततः प्रभृति मण्डलम् ॥७॥

इन श्लोकोंमें कल्हण अपने पूर्ववर्त्ती इतिहासकारों पर एक दोषारोपण करता है। वह कहता है कि प्रतापादित्यका सम्बन्धी विक्रमादित्य शकारि-विक्रम नहीं था। उससे पूर्वके ऐतिहासिकोंने इस विषय में भूल की है। यह विक्रम हर्ष विक्रम था, परन्तु शकारि नहीं था। ऐसा मत कल्हण का है।

कल्हणने इस प्रतापादित्यके लगभग २९० वर्ष पश्चात् मातृगुप्तका काल रखा है। परन्तु उसके अनुसार मातृगुप्त उज्जयिनीके हर्ष विक्रमका अनुजीवी था—

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः । एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत ॥१२५
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः । शकान् विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघूकृतः॥१२८
नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम् । तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सर्वास्थानस्थमासदत् ॥१२९

यह स्पष्ट कहा गया है कि मातृगुप्त शकारि हर्ष-विक्रम का समकालिक था। यह हर्ष-विक्रम प्रतापादित्यका सम्बन्धी हर्ष-विक्रम ही था। कल्हणसे पूर्वके ऐतिहासिक सच्चे थे। कल्हणने उनका मत त्यागकर मातृगुप्तका काल भी उलट छोड़ा है। समुद्रगुप्त विक्रमाङ्क, चन्द्रगुप्त-विक्रम अथवा स्कन्दगुप्त-विक्रम हर्षापर नाम वाले नहीं थे। अतः उनके साथ मातृगुप्तका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। मातृगुप्तका स्मरण तो महाराज समुद्रगुप्त विक्रमाङ्कने स्वयं किया है—

मातृगुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम् । काश्मीरराजो ऽप्यभवत् सरस्वत्याः प्रसादतः॥२१॥

अतः मातृगुप्त समुद्रगुप्तका पूर्ववर्ती है। वह तो हर्षविक्रम अथवा शूद्रक-विक्रमका समकालीन था। इस प्रकार पूर्वलेख के आधार पर हम कह सकते हैं कि इन्द्राणिगुप्त, अग्निमित्र, विक्रमादित्य, विषमशील और हर्षविक्रम महाराज शूद्रकके ही नाम थे।

भट्ट बाणने कादम्बरी कथाके आरम्भमें इसी शूद्रकका दिव्यचरित्र वर्णन किया है। उस समय शूद्रक विदिशामें रहता था। कथासरित् सागर अन्तर्गत चतुर्थ वेताल कथामें शूद्रकका वास शोभावती नगरीमें लिखा गया है।[1] हो सकता है कि विदिशाका ही दूसरा नाम शोभावती हो। अथवा वेताल-कथाके समय शूद्रक शोभावती नगरीमें रहता हो।

१. १२।११।५॥

विविधतीर्थकल्प' आदि जैन ग्रन्थोंमें जैनेतर स्रोतसे जो शूद्रककी कथा लिखी गई है, उसका आधार कथा-सरितसागरका चतुर्थ वेताल कथानक ही है।

शूद्रक-विक्रम और प्रसिद्ध संवत्-प्रवर्तक विक्रम दो विभिन्न व्यक्ति

(क) स्कन्दपुराण के चतुर्युग व्यवस्था नामक चालीसवें अध्याय में लिखा है—

त्रिषु वर्ष सहस्रेषु कलेर्यातेषु पार्थिवः। त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति ॥२४६॥

शूद्रको नाम वीराणामधिपः सिद्धिमत्र सः।

ततस्त्रिषु सहस्रेषु दशाधिक शतत्रये।

भविष्यं नन्दराज्यं च चाणक्यो यान् हनिष्यति ॥२५१॥

ततस्त्रिषु सहस्रेषु विंशत्या चाधिकेषु च ॥२५२॥

भविष्यं विक्रमादित्यराज्यं सोऽथ प्रलप्स्यते।

अर्थात कलि के ३२६० वर्ष जानेपर शूद्रक होगा। कलिके ३३१० वर्ष बीतनेपर नन्दराज्यका अन्त होगा। तथा ३०२० वर्षपर विक्रमादित्य राज्य होगा। इससे आगे ही लिखा है कि कलिके ३६०० वर्ष बीतनेपर बुद्धका अवतार होगा। यहांपर पुराण-पाठ अत्यन्त भ्रष्ट हो गया है। तथापि हमारा इन श्लोकोंके यहां उद्धृत करनेका यही अभिप्राय है कि शूद्रक और विक्रम दो भिन्न व्यक्ति भी हो चुके हैं। अतएव महाराजाधिराज समुद्रगुप्त-निर्दिष्ट शूद्रकका वैक्रम संवत् वर्तमान कालमें प्रचलित विक्रम-संवत्से भिन्न था।

(ख) शूद्रक-संवत्के प्रचलित रहनेका साक्ष्य सुमतितंत्रके प्रमाणसे पहले दिया जा चुका है।[२] उसमें लिखा है कि—युधिष्ठिर राज्याब्द २०००, नन्द राज्याब्द ८००, चन्द्रगुप्त राज्याब्द १३२, शूद्रकदेव राज्याब्द ...... ।

इससे ज्ञात होता है कि सन् ५७६ के समीप, जब सुमति-तंत्र लिखा गया, तब शूद्रक-संवत्का अस्तित्व माना जाता था। सुमति-तंत्रका अगला पाठ उपलब्ध प्रतिमें त्रुटित है। संभव है मूल पाठमें इससे आगे विक्रम संवत और तदनन्तर शक-कालका उल्लेख हो।

(ग) राजतरंगिणीमें लिखा है—

संत्यज्य विक्रमादित्यं सत्वोद्रिक्तं च शूद्रकम् ।३।३४३॥

अतः कल्हणके विचारमें प्रसिद्ध विक्रमादित्य और शूद्रक दो पृथक्-पृथक् व्यक्ति थे। कल्हणने हर्ष-विक्रमके सम्बन्धमें जो भूलकी है, उसका उल्लेख हम कर ही चुके हैं।

(घ) महाकवि राजशेखर अपनी काव्यमीमांसा ११९०॥ में लिखता है—

वासुदेव--सातवाहन--शूद्रक--साहसाङ्क ....।

इससे भी स्पष्ट होता है कि शूद्रक और साहसाङ्क अथवा प्रचलित विक्रम संवत-प्रवर्तक साहसांक दो विभिन्न व्यक्ति थे। साहसांक ही प्रचलित विक्रम-संवतका प्रवर्तक था, यह आगे लिखा जायेगा। अतः शूद्रक-विक्रम संवत उससे पहले चला होगा।

(ङ) जैन परम्पराके अनुसार कुछ जैन आचार्योंकी उत्तरोत्तर कालीनता निम्नलिखित है—

१. पृ० ६१–६४।

२. हमारा रचा भारतवर्ष का इतिहास, पृष्ठ २१६।

समकालीन एक सातवाहन राजा[१]—श्री कालिकाचार्य[२]—गर्दभिल्लके दण्डनार्थ शक-राजका निमंत्रयिता
|
आर्य नागहस्ती[२]
|
शकारि-शूद्रक-विक्रम, सातवाहन[३]—[४]पादलिप्तक[२]—नागार्जुन[३] । पाटलिपुत्र में मुरुण्ड
|
स्कन्दिलाचार्य[४]
|
मुकुन्द वृद्धवादी[४]
|
सिद्धसेन दिवाकर[५]-संवत-प्रवर्तक विक्रम[६]-साहसांकका समकालिक

जैन परम्परा के अनुसार सिद्धसेन दिवाकर और पादलिप्तकमें कालकी दृष्टिसे पर्याप्त अन्तर था। सिद्धसेन दिवाकर संवत्-प्रवर्तक विक्रमका समकालिक था। जैन परम्परामें इस विक्रमको साहसांक भी कहा गया है।[७] शूद्रक-विक्रम इस साहसांकसे पहले हो चुका था। अतः इस परम्पराके अनुसार भी दोनों व्यक्ति सर्वथा भिन्न थे।

इन दोनों विक्रमोंकी पृथकताको ध्यानमें न रखकर ही अनेक जैन लेखकोंने कई काल-गणनाओं में भारी भूलकी है। इस कठिनाईको अनुभव करके प्रबन्ध कोशका कर्ता राजशेखर सूरी सातवाहन प्रबन्धके अन्तमें लिखता है—

श्रीवीरे शिवं गते ४७० विक्रमार्को राजा तत्कालीनोऽयं सातवाहनस्तत्प्रतिपन्नत्वात्। यस्तु कालिकाचार्य पार्श्वात् पर्युषणामेकेनाह्ना अर्वागानाययत् सोऽन्यः सातवाहन इति सम्भाव्यते। अन्यथा—

नवसयतेण उ एहिं समइक्कंतेहिं वीरमुक्खाओ। पज्जोस वण चउत्थी कालयसूरीहिं तो ठविआ ॥५

इति चिरन्तनगाथाविरोधप्रसङ्गात्। न च सातवाहनक्रमिकः सातवाहन इति विरुद्धम्। भोजपदे बहूनां भोजत्वेन जनकपदे बहूनां जनकत्वेन रूढत्वात्।[८]

---

१. प्रभावकचरित, श्री कालकसूरिप्रबन्ध, श्लोक ११३-११६॥

२. प्रभावकचरित, श्री पादलिप्त प्रबन्ध, श्लोक १५। प्रबन्धकोष, पृ० १२। पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० ९२।

३. नागार्जुन सातवाहनका गुरु तथा पादलिप्तकका शिष्य। प्रबन्धकोश, पृ० ८४। प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० ११६।

४. प्रभावकचरित, वृद्धवादी प्रबन्ध ६१॥श्लोक ४,५॥ प्रबन्धकोश, पृ० १५।

५. कालिकसूरिः प्रतिमां सुदर्शनाय व्यधापयद्यां प्राक्।
साकाशे गच्छन्ती निषेधिता सिद्धसेनेन॥ प्रभावक चरित, श्री विजयसिंह सूरि प्रबन्ध, श्लोक ७८॥
प्रबन्धकोश, पृ०१६।

६. श्री सिद्धसेन सूरेर्दिवाकराद् बोधमाप्य तीर्थेऽस्मिन्।
उद्धारं ननु विदधे राजा श्रीविक्रमादित्य:॥ प्र० चरित, श्री वि० सिं० सूरि प्र० श्लोक ७७। विविधतीर्थकल्प, कुडुंगेश्वर युगादिदेवकल्प, पृ० ८८, ।८६।

७. प्रबन्धचिन्तामणि।

८. प्रबन्धकोश, पृ० ७४॥

जैन राजशेखर सूरी उद्धृत इस पुरातन गाथामें कालिकाचार्य और वीरमोक्षका अन्तर ९९३ वर्ष का माना गया है। यदि यह कालिकाचार्य आर्य नागहस्तीका पूर्वकालीन कालिकाचार्य है, तो परिणाम और होगा। वह कालिकाचार्य सातवाहनसे पहले हो चुका था।

हमारा विचार है कि गत कई शताब्दियोंके जैन लेखक साहसाङ्क विक्रमको ही शूद्रक-विक्रम समझने लग पड़े थे। वीर-मोक्षसे शूद्रक-विक्रमका काल ४७० वर्ष पश्चात् था। साहसाङ्क-विक्रम उससे बहुत पश्चात् हुआ था। इस भूलसे जैन-काल-गणनामें बड़ी गड़बड़ हो गई। उस गड़बड़को सुलझानेके लिए आगे अनेक जैन ग्रन्थोंकी गणनाकी तुलना की जाती है—

	त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति[1]		जैन-हरिवंश पुराण[2]		तित्थोगाली पइन्नय[3]		विविधतीर्थ कल्प[4]		मेरुतुङ्गसे पूर्व गाथाएं[5]	
१	पालक	६०	पालक	६०	पालक	६०	पालक	६०	पालक	२०
२	विजयवंस	१५५	विषयभूभुज	१५५	नन्द	१५५	नन्द	१५५	नन्दराज्य	१५८
३	मुरुदय	४०	मुरुढ	४०	मुरिया	१६०	मोरियवंस	१०८	मोरिय	१०८
४	पुस्समित्त	३०	पुष्यमित्र	३०	पुष्यमित्र	३५	पूसमित्त	३०	पुष्यमित्र	३०
५ ६	वसुमित्त अग्गिमित्त	६०	वसु अग्निमित्र	६०	बलमित्र भानुमित्र	६०	बलमित्र भानुमित्र	६०	बलमित्र भानुमित्र	६०
७	गंधव्वय	१००	रासभराज	१००	नभसेन	४०	नरवाहन	४०	दधिवाहन	४०
८	नरवाहन[6]	४०	नरवाहन[6]	४०	गद्दभ	१००	गद्दभिल्ल	१३	गर्दभिल्ल	४४
९	भच्छटण	२४२	भटटुबाण	२४२	शक		शक	४	शक	५०
१०	गुप्त	२३१	गुप्त	२३१	|		विक्रमादित्य		विक्रम	६७
११	इन्द्रसुत कल्की	४२	कल्की अजितंजय	४२	१३२३ वर्ष पश्चात् कल्की					

उपरिलिखित तालिकाओंसे ज्ञात होता है कि जैन हरिवंशकारने त्रैलोक्य प्रज्ञप्तिका उल्थामात्र किया है। शेष तीन ग्रन्थकार किसी स्रोतके भ्रष्ट हो जानेके कारण अथवा किसी कल्पनाका अनुकरण करते हुए कुछ विभिन्न मत लिखते हैं।

दो शक—वस्तुतः शक दो थे। एक तो मुरुदय–मुरुढ–मुरिया अथवा मुरुण्ड थे। उनका नाश अग्निमित्र-शूद्रकने किया। शूद्रकका पूर्ववर्ती उज्जयनका स्वाति इसी मुरुण्डका सहायक अथवा विषयपति होगा। उन दिनों एक मुरुण्ड पाटलिपुत्रमें तो था ही। सम्भव है भारतका पश्चिम भाग भी उसके अथवा उसके सम्बन्धियोंके राज्यान्तर्गत हो गया हो। दूसरा शक चष्टणोंका शक था। उसका नाश समुद्रगुप्त-विक्र-

१. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss. in the Central Provinces and Berar, रायबहादुर हीरालाल बी० ए० कृत, नागपुर सन् १९२६। भूमिका पृ० १६।
२. Indian Antiquary May, 1886, p. 142. जैन हरिवंश, अध्याय ६०, श्लोक ४८७, ४८८, ५५२॥— यह ग्रन्थ शक ७०५ में रचा गया।
३. ना० प्र० प० भाग १० अंक ४, संवत् १९८६, पृ० ६१४, ६१५।
४. ,, पृ० ३८, ३९।
५. ना प्र० प० पृ० ६१५।
६ तपागच्छ पट्टावलीके अनुसार — गाहवाण पाठ है — Nagpur Uni. jour. Dec. 1940 p. 53.

04